वश संजदशब्दको निकलवाकर द्रव्यस्त्रीकी घोषणाकी जायगी तो भी नं. ९३ वें सूत्रान्तर्गत मनुष्यिणी द्रव्यस्त्री सिद्ध नहीं होगी। प्रत्युत् प्रतिपक्षियोंको पूरा बल मिल जायगा। अतः बेहतर है कि संजदशब्दके निकलवानेके दुराग्रहको त्यागकर पाठ्यप्रतियोंमें जैसा पाठ है वैसा ही भावस्त्रियोंकी अपेक्षा स्वीकार कर लिया जाय।

हमने अपने इस ट्रेक्ट में वास्तविक वस्तु स्थिति क्या है, इस विषय पर अनेक आगमोंके प्रमाणोंको सामने रखते हुए प्रकाश डाला है। आशा है निम्न सुनीतिके अनुसार पाठकवर्ग सदसद्का विचार कर वास्तविक परिस्थिति पर पहुंचेंगे।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥ १॥

इस ग्रन्थके प्रकाशनमें जिन महानुभावोंने सहायता दी है वे अपना नाम प्रकाशित करना नहीं चाहते हैं। इसलिए हम सिवा उनका आभार प्रकाशित करनेके उनका परिचय आदि देनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। उनके इस धार्मिक प्रेमका अभिनन्दन करते हुए उनका हम पूर्ण आभार मानते हैं।

विद्यावाचस्पति चि० पं. वर्धमान शास्त्रीने अपने कल्याण पॉवर प्रिंटिंग प्रेसमें इसे समय पर मुद्रित किया है। अतः उनका आभार मानना भी हमारा कर्तव्य है। तदनुसार हम उनके भी पूर्ण आभारी हैं।

निवेदक—

न्यायसिद्धान्तशास्त्री पन्नालाल सोनी.

दि. जैन जिनवाणी जीर्णोद्धारक संस्था ' की ओरसे की जाने-वाली नागरी लिपिकी ताम्रपत्र प्रतिमें से उसे निकलवा देने के लिए विद्वत्समाज में तहलका मचा रक्खा है।

इस विषय के मुख्य नेता पं. मक्खनलालजी और मोटे पं. रामप्रसादजी हैं। जो सब विषयोसे व्यावृत्त होकर इसी एक मुख्य कार्यमें संलग्न हैं। ट्रेक्टोपर ट्रेक्ट और लेखोपर लेख इनकी ओरसे निकाले जा रहे हैं, स्वपक्षमें मिलानेके लिए भरसक प्रेरणाएं की जा रही हैं, चिट्ठी पत्री आदि की भी दौड धूप खूबही मचा रक्खी है। तात्पर्य, हरएक प्रकारका अथक परिश्रम किया जा रहा है, प्रार्थनाओका तांता बांध रक्खा है, स्वपक्ष साधनेके लिए सब तरहके अवलम्बन लिये जा रहे हैं। सम्यग्दर्शन और आगम-संरक्षाका भार भी इन्ही में आकर नियंत्रित हो गया है। अतः जन्मसे ही पूर्ण आगमश्रद्धानी विद्वानोको सुधारक उद्घोषितकर उन्हें समाजकी दृष्टिसे गिराये जानेका असफल प्रयत्न किया जा रहा है।

संजदशब्द नं. ९३ वें सूत्रमें नही होना चाहिए इस सम्ब-न्धमें इन लोगों के कतिपय निम्न मुद्दे हैं—

१–गुणस्थान और मार्गणाएं द्रव्यशरीरकी पात्रताके अनुसार निरूपण की गई हैं।

२–जहां पर गतियोका, कायका और योगोका कथन प सियो के सम्बन्ध से कहा है वहा पर द्रव्यवेद की प्रधानता

१६— आदि की चार मार्गणा [illegible]
१७ आगेकी वेद कषायादि मार्गणाएं [illegible]

उनमें द्रव्यशरीर के वर्णन का कोई कारण नहीं है। इसलि[illegible]

इन मुद्दों में कितने ही मुद्दे परस्पर विरोधी हैं। बाकी [illegible] आशय और कल्पित शब्दजाल के सिवा मूलभूत आगम प्रमाण का इनमें सर्वथा अभाव है।

फिर भी इन सबका निरसन आगे के विवेचनमें यथास्थान पाया जायगा। यहां इतना कह देना ही पर्याप्त है कि लेख[illegible] महोदय ने षट्खंडागमके नामसे स्वकल्पित कल्पनाके बलपर य[illegible] सब खिचडी तैयार की है। और न. ९३ में सूत्रान्तर्गत मनुष्यिणी द्रव्यस्त्रीवेद की सिद्धिके बहाने स्त्री-मुक्ति प्रतिपादकोंको सहाय[illegible] प्रदान की है।

समाज के विद्वानों में इन लोगोंने दो दल नियत कर दि[illegible] हैं। उनका नाम रक्खा है द्रव्यपक्षी और भावपक्षी। हमें वे भा[illegible] पक्षी कहकर सम्बोधित करते है। ऐसा करके वे स्वयं द्रव्यपक्ष[illegible] सिरताज बने हैं, वस्तुवृत्त्या हम न भावपक्षी ही हैं और न द्रव्यप[illegible] ही हैं। हम तो आगमपक्षी हैं। दि. जैन ऋषियों के आगमों

अर्पितानर्पितसिद्धेः ।

पिता-पुत्रादि लौकिक सम्बन्ध भी [illegible]
सिद्ध हैं। अनन्त धर्मात्मक वस्तु या पदार्थके अनन्त धर्मों एक साथ
नहीं कहे जाते। उनमेंसे जिस धर्मको कहा जाता है उसमें व
धर्म ही मुख्य या प्रधान हुआ करता है। अन्य धर्म होते हुए
भी उस अपेक्षासे वे गौण हैं। यह नहीं कि उनका अभाव हो।

ग्रन्थकार जिस अपेक्षासे जो विषय कहता हो उसी की
अपेक्षा वहां लगानी चाहिए। भिन्न वस्तुका सम्बन्ध जोड़ा जायगा
तो जो बात कही गई है वह कोशों दूर चली जायेगी।

कोई ग्रन्थकार वस्तुका कथन निश्चय की प्रधानतासे करते
जैसे अध्यात्म शास्त्रका कथन। कोई व्यवहारकी अपेक्षासे कर
हैं जैसे सिद्धान्त शास्त्रोंका कथन। कोई भावकी मुख्यतासे कर
हैं। जैसे जीवट्ठाण, खुद्दाबन्ध, बंधसामित्तविचय, कसायपाहु
आदि का कथन। कोई द्रव्यकी प्रधानता से कथन करते हैं। जै
पट्प्राभृतादि में द्रव्यस्त्रीके मुक्ति निषेध द्रव्यपुरुषके मुक्ति विधा
आदि। इसी तरह कहीं उत्सर्गकी प्रधानतासे और कहीं अपवादव

प्रतिपादन किया जारहा है उसीकी वहा प्रधानता होती है। जै
गोम्मटसार में गुणस्थानो और मार्गणास्थानो का कथन भावाप
है। इसमें द्रव्य अपेक्षित नहीं है। अमुक के अमुक शरीर हो
हैं, द्रव्यवेद होते हैं, संहनन होते हैं अमुक संहनन वाला अमु
पृथिवीतक, अमुक स्वर्गतक जाता है। अमुक संहनन वाला ह
मुक्ति जाता है। इत्यादि कथनो में द्रव्यप्रधान है। भाव गौण है
भावमें भावप्रधान द्रव्यगौण, द्रव्यमें द्रव्यप्रधान भावगौण होते हैं
कार्य संपादन दोनों से होता है। परन्तु कथनमें प्रधानता-अप्र
धानता अवश्य रहती है। अत: विचार करने की आवश्यकत
रहती है कि कौन कथन किस अपेक्षासे है।

सिद्धान्त शास्त्रोंमें गुणस्थानो और मार्गणास्थानोंका कथन
भावप्रधानता को लिए हुए है। क्योंकि इनकी उत्पत्ति जीवके
असाधारण आत्मभूत पंचभावोसे होती है। द्रव्यशरीर या
द्रव्यवेदकी इन गुणस्थानो और मार्गणास्थानो में प्रधानता अविव
क्षित है क्यो कि वे पांच असाधारण भाव द्रव्यशरीरो और
द्रव्यवेदोंमें नही पाये जाते हैं। जो वस्तु मूल पांच भावो और
उत्तर त्रेपन भावोसे उत्पन्न होती है या परिणत होती है
वहा ही ली गई है। उसीमें अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र, स्पर्श
आदि कहे गये हैं।

इस भाव कथनमें द्रव्यका आभास भी आता है, इसका कारण
यह है कि उस भाववान् वस्तु के साथ शरीरादि जुड़े हुए हैं।
इस लिए वे शरीरादि विग्रह गतिको छोड़कर बाकी समयों में

प्रतिपादन किया जारहा है उसीकी [illegible] प्रधानता होती है। गोम्मटसार में गुणस्थानो और मार्गणास्थानों का कथन भा है। इसमें द्रव्य अपेक्षित नहीं है। अमुक के अमुक शरीर हैं, द्रव्यवेद होते हैं, संहनन होते हैं अमुक संहनन वाला पृथिवीतक, अमुक स्वर्गतक जाता है। अमुक संहनन वाल मुक्ति जाता है। इत्यादि कथनों में द्रव्यप्रधान है। भाव गौ भावमें भावप्रधान द्रव्यगौण, द्रव्यमें द्रव्यप्रधान भावगौण होते कार्य संपादन दोनो से होता है। परन्तु कथनमें प्रधानता- धानता अवश्य रहती है। अतः विचार करने की आवश्य रहती है कि कौन कथन किस अपेक्षासे है।

सिद्धान्त शास्त्रोंमें गुणस्थानो और मार्गणास्थानोंका व भावप्रधानता को लिए हुए है। क्यों कि इनकी उत्पत्ति ज असाधारण आत्मभूत पंचभावोसे होती है। द्रव्यशरीर द्रव्यवेदकी इन गुणस्थानों और मार्गणास्थानो मे प्रधानता अ क्षित है क्यों कि वे पाच असाधारण भाव द्रव्यशरीरो द्रव्यवेदोंमें नहीं पाये जाते हैं। जो वस्तु मूल पांच भावों उत्तर त्रेपन भावोसे उत्पन्न होती है या परिणत होती वहा ही ली गई है। उसीमें अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र, आदि कहे गये हैं।

इस भाव कथनमे द्रव्यका आभास भी आता है, इसका क यह है कि उस भाववान् वस्तु के साथ शरीरादि जुड़े हुए इस लिए वे शरीरादि विग्रह गतिको छोड़कर बाकी समय

[illegible]

गुरि जाता है । इत्यादि कथनो मे द्रव्यप्रधान है । भावमार्गणा

भावमें भावप्रधान द्रव्ययोग, द्रव्यमें [illegible] प्रधान भावयोग [illegible]

कार्य संपादन दोनो से होता है । परन्तु कथनोंमें प्रधानता [illegible]

धानता अवश्य रहती है । अतः विचार करने की आवश्यक

रहती है कि कौन कथन किस अपेक्षासे है ।

सिद्धान्त शास्त्रोंमें गुणस्थानो और मार्गणास्थानोंका क

भावप्रधानता को लिए हुए है । क्यों कि उनकी उत्पत्ति जी

असाधारण आत्मभूत पंचभावोंसे होती है । द्रव्यशरीर

द्रव्यवेदकी इन गुणस्थानो और मार्गणास्थानो मे प्रधानता अ

क्षित है क्यो कि वे पाच असाधारण भाव द्रव्यशरीरों

द्रव्यवेदोंमें नहीं, पाये जाते हैं । जो वस्तु मूल पांच भावों

उत्तर त्रेपन भावोसे उत्पन्न होती है या परिणत होती

वहां ही ली गई है । उसीमें अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र,

आदि कहे गये हैं ।

इस भाव कथनमें द्रव्यका आभास भी आता है, इसका व

यह है कि उस भाववान् वस्तु के साथ शरीरादि जुड़े हुए

इस लिए वे शरीरादि विग्रह गतिको छोड़कर बाकी सम

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] जाता है । इत्यादि कथनों में द्रव्यप्रधान है । भावोंमें [illegible]

भावमें भावप्रधान द्रव्यगौण, द्रव्यमें द्रव्यप्रधान भावगौण होते [illegible]
कार्य सम्पादन दोनों से होता है । परन्तु कथनमें प्रधानता अप्र-
धानता अवश्य रहती है । इस विचार करने की आवश्यकता
रहती है कि कौन कथन किस अपेक्षासे है ।

सिद्धान्त शास्त्रोंमें गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंका कथ[न]
भावप्रधानता को लिए हुए है । क्योंकि उनकी उत्पत्ति जीवों[के]
असाधारण आत्मभूत पञ्चभावोंसे होती है । द्रव्यशरीर [और]
द्रव्यवेदकी इन गुणस्थानों और मार्गणास्थानो में प्रधानता अवि[व-]
क्षित है क्यो कि वे पाच असाधारण भाव द्रव्यशरीरमें [और]
द्रव्यवेदोंमें नहीं पाये जाते हैं । जो वस्तु मूल पांच भावों [और]
उत्तर त्रेपन भावोंसे उत्पन्न होती है या परिणत होती [है]
वहा ही ली गई है । उसीमें अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र, स्प[र्शन]
आदि कहे गये हैं ।

इस भाव कथनमें द्रव्यका आभास भी आता है, इसका का[रण]
यह है कि उस भाववान् वस्तु के साथ शरीरादि जुड़े हुए हैं
इस लिए वे शरीरादि विग्रह गतिको छोड़कर बाकी समयों

प्रतिपादन किया जारहा है उसीकी [illegible] प्रधानता होती है।
गोम्मटसार में गुणस्थानो और मार्गणास्थानों का कथन भावा
है। इसमें द्रव्य अपेक्षित नही है। अमुक के अमुक शरीर
हैं, द्रव्यवेद होते हैं, संहनन होते हैं अमुक संहनन वाला अ
पृथिवीतक, अमुक स्वर्गतक जाता है। अमुक संहनन वाला
मुक्ति जाता है। इत्यादि कथनो में द्रव्यप्रधान है। भाव गौण
भावमें भावप्रधान द्रव्यगौण, द्रव्यमें द्रव्यप्रधान भावगौण होते
कार्य संपादन दोनो से होता है। परन्तु कथनमें प्रधानता-
धानता अवश्य रहती है। अत विचार करने की आवश्य
रहती है कि कौन कथन किस अपेक्षासे है।

सिद्धान्त शास्त्रोंमें गुणस्थानो और मार्गणास्थानोंका व
भावप्रधानता को लिए हुए है। क्यों कि इनकी उत्पत्ति जं
असाधारण आत्मभूत पंचभावोसे होती है। द्रव्यशरीर
द्रव्यवेदकी इन गुणस्थानो और मार्गणास्थानो में प्रधानता अ
क्षित है क्यो कि वे पांच असाधारण भाव द्रव्यशरीरो
द्रव्यवेदोंमें नही, पाये जाते हैं। जो वस्तु मूल पांच भावो
उत्तर त्रेपन भावोसे उत्पन्न होती है या परिणत होत
वहां ही ली गई है। उसीमें अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र,
आदि कहे गये हैं।

इस भाव कथनमें द्रव्यका आभास भी आता है, इसका
यह है कि उस भाववान् वस्तु के साथ शरीरादि जुड़े हुए
इस लिए वे शरीरादि विग्रह गतिको छोड़कर बाकी सम

प्रतिक्षण जीवके भाव होते ही रहते हैं। इस लिए कथन तो होता है भावका परन्तु वे भाव किसी अपेक्षा अमूर्तिमान् होने के कारण दिखते नहीं हैं। दिखते हैं द्रव्यशरीर और इन्द्रिय, इसलिए दृष्टि भावको छोड़ द्रव्यकी ओर घूम जाती है। तब वे समझने लगते हैं कि यह कथन द्रव्यसे किया गया।

कहीं द्रव्य और भाव समान मिल जाते हैं। जैसे स्त्रीवेद के उदयवाले जीवके मिथ्यात्वका अन्तर कुछ कम पचपन पल्य पाया जाता है। वह इस तरह कि एक पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी अट्ठाईस मोहकर्मकी सत्तावाला जीव पचपनपल्यप्रमाण आयुस्थिति-वाली देवियोंमें जाकर उत्पन्न हुआ। पहले अन्तर्मुहूर्त में उसने छहों पर्याप्तियां पूर्ण कीं, द्वितीय अन्तर्मुहूर्तमें विश्राम लिया, तृतीय अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध हुआ और चौथे अन्तर्मुहूर्त में वेदक-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। यहीं से उसने मिथ्यात्वका अन्तर प्रारंभ किया। वेदकसम्यक्त्वके रहते हुए ही वह अन्तमें परभवकी आयुका बन्ध कर मिथ्यात्वको प्राप्त होगया। इस प्रकार मिथ्यात्वका अन्तर लब्ध होता है। सम्य-क्त्वमें उसने आयु बांधी थी इसलिए पांचवें अन्तर्मुहूर्तमें सम्य-क्त्वसे ही निकला, मरा और मनुष्य हुआ। इस तरह पांच अन्तर्मुहूर्त कम पचपनपल्यप्रमाण स्त्रीवेदके उदयवाले जीवके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है। (देखो खंड ५ पे. ९५)

इस कथनमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर देवियोंमें ही प्रारंभ

प्रतिपादन किया जाता है [illegible] है।
गोम्मटसार में गुणस्थानों और मार्गणास्थानों का [illegible]
है। इसमें द्रव्य अपेक्षित नहीं है। अमुक के अमुक शरीर
हैं, द्रव्यवेद होते हैं, संहनन होते हैं [illegible]
पृथिवीतक, अमुक स्वर्गतक जाता है। अमुक संहनन [illegible]
मुक्ति जाता है। इत्यादि कथनों में द्रव्यप्रधान है। [illegible]
भावमें भावप्रधान द्रव्यगौण, द्रव्यमें द्रव्यप्रधान भावगौण होते
कार्य संपादन दोनो से होता है। परन्तु कथनमें प्रधानता-अ
धानता अवश्य रहती है। अत: विचार करने की आवश्य
रहती है कि कौन कथन किस अपेक्षासे है।

सिद्धान्त शास्त्रोंमें गुणस्थानो और मार्गणास्थानोंका कथ
भावप्रधानता को लिए हुए है। क्यों कि इनकी उत्पत्ति जीव
असाधारण आत्मभूत पचभावोसे होती है। द्रव्यशरीर
द्रव्यवेदकी इन गुणस्थानों और मार्गणास्थानो मे प्रधानता अवि
क्षित है क्यो कि वे पाच असाधारण भाव द्रव्यशरीरो औ
द्रव्यवेदोंमें नहीं, पाये जाते हैं। जो वस्तु मूल पाच भावों औ
उत्तर त्रेपन भावोसे उत्पन्न होती है या परिणत होती
वहां ही ली गई है। उसीमें अस्तित्व, संख्या, क्षेत्र, स्प
आदि कहे गये हैं।

इस भाव कथनमें द्रव्यका आभास भी आता है, इसका कार
यह है कि उस भाववान् वस्तु के साथ शरीरादि जुड़े हुए हैं
इस लिए वे शरीरादि विग्रह गतिको छोड़कर बाकी समयों

प्रतिक्षण जीवके साथ रहते ही रहते हैं। इस लिए कथन तो होता है भावका परन्तु वे भाव किसी अपेक्षा अमूर्तिमान् होने के कारण दिखते नहीं हैं। दिखते हैं द्रव्यशरीर और द्रव्यवेद, इसलिए दृष्टि भावको छोड द्रव्यकी ओर घूम जाती है। तब वे समझने लगते हैं कि यह कथन द्रव्यमें किया गया।

कहीं द्रव्य और भाव समान मिल जाते हैं। जैसे स्त्रीवेद के उदयवाले जीवके मिथ्यात्वका अन्तर कुछ कम पचपन पल्य पाया जाता है। वह इस तरह कि एक पुरुषवेदी या नपुंसकवेदी अट्ठाईस मोहकर्मकी सत्तावाला जीव पचपनपल्यप्रमाण आयुस्थिति-वाली देवियोंमें जाकर उत्पन्न हुआ। पहले अन्तर्मुहूर्त में उसने छहों पर्याप्तियां पूर्ण कीं, द्वितीय अन्तर्मुहूर्तमें विश्राम लिया, तृतीय अन्तर्मुहूर्तमें विशुद्ध हुआ और चौथे अन्तर्मुहूर्त में वेदक-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। यहीं से उसने मिथ्यात्वका अन्तर प्रारंभ किया। वेदकसम्यक्त्वके रहते हुए ही वह अन्तमें परभवकी आयुका बन्ध कर मिथ्यात्वको प्राप्त होगया। इस प्रकार मिथ्यात्वका अन्तर लब्ध होता है। सम्यक्त्वमें उसने आयु बांधी थी इसलिए पाचवें अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वसे ही निकला, मरा और मनुष्य हुआ। इस तरह पांच अन्तर्मुहूर्त कम पचपनपल्यप्रमाण स्त्रीवेदके उदयवाले जीवके मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है। (देखो खंड ५ पे. ९५)

इस कथनमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर देवियोंमें ही प्रारंभ

[illegible]

[illegible] ... मार्गणा ... भी आगम[illegible]
ही है। उसीतरह गत्यादि मार्गणाएं भी द्रव्यशरीर व द्रव्यवेद
होते हुए भी भावमार्गणाएं होती हैं। जिसतरह नामकर्मोदय के अ-
न्तर भेद स्त्रीवेदादिकके उदयसे जायमान भावस्त्रीवेदादि
शरीर व द्रव्यवेद में नहीं संभवते हैं उसी तरह जीवविपाकी
कर्म के उदयसे जायमान गतिभाव, इन्द्रियजातिनामकर्म के
यसे जायमान एकेन्द्रियआदि जातिभाव पृथिवीआदि नामक
उदयसे जायमान पृथिवीआदि जातिभाव और योगोंके क्षयोप
से जायमान क्षयोपशम भाव शरीरों व द्रव्यवेदों में नहीं संभवते

भावानुगममें कहा है कि भाव चार प्रकारका होत
नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भावभाव। इसीप्रकर
टीकाकार पूछता है कि इन चार भावों में से यहां कौनसा
अधिकृत है? उत्तर देते हैं नोआगमभावभाव अधिकृत है।
पूछता है यह कैसे जाना? उत्तर देते हैं नोआगमभावभावको
कर नामादि शेष भाव चौदह जीवसमासों के अनात्मभूत भ

इसलिए उन अनात्मभूत भावोंसे यहां कोई प्रयोजन नहीं है। यथा—

णामकम्मजणिदभावो त्ति [illegible] भावो।—— ——
एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो? णोआगमभावेण।
तं कधं णव्वदे? णामादितिण्णिभावेहि चोद्दसजीवसमासाणं [illegible]-
भूदेहि पओजणाभावा। ख. ५ पे. १८५।

औपशमिकादि पांच भाव जीवके असाधारण भाव हैं। इस विषयमें कोई शंका ही नहीं है। गति, इन्द्रियजाति, पृथिवी-त्वादि कायजाति ये तीनों भाव औदयिक भाव हैं और योग क्षायोप-शमिक भाव हैं. इन चारों भावोंसे गति, जाति, काय और योग ये चार मार्गणाएं होती हैं। इस लिए वेदादि मार्गणाओंकी तरह ये चारों मार्गणाएं भी भावमार्गणाएं हैं। इनसे भी न शरीर पर्यायें होती हैं और न औदारिकादि शरीरोंके द्रव्यवेदोंकी रचना होती है। किन्तु इन गत्यादिजीवभावोंके उदयसे जीवकी नार-कादिपर्यायें, एकेन्द्रियादिपर्यायें, पृथिवीत्वादिपर्याय और आत्म प्रदेशोंका हिलन—चलन रूप योग पर्यायें होती हैं। गत्यादिजीव-विपाकी नामकर्मोंके उदयसे यदि औदारिकादिशरीरोंकी रचना होने लग जायगी तो फिर [illegible] औदारिकादिशरीर नामकर्म, अंगोपांग, बन्धन, संघात संस्थान, संहनन आदि पुद्गलविपाकी कर्म साफ व्यर्थ होंगे। इनका कार्य जब कि गति, जात्यादिजीव-विपाकी कर्म ही करलेंगे।

अन्तिम निष्कर्ष यह है कि शरीरादिक भी सत्पदार्थ हैं,

चौबीसवें सूत्रसे आदेश अर्थात् मार्गणाओंका कथन शुरु
है। सबसे प्रथम गतिमार्गणा है। इन सूत्रोंमें गतिके अनु-
से नरकगति है, तिर्यंचगति है, मनुष्यगति है, देवगति है
सिद्धगति है। इस प्रकार पांच गतियोंका अस्तित्वमात्र कहा
है। २५-२६-२७-२८ इन चार सूत्रोंमें चार गतियोंके
क, तिर्यंच, मनुष्य और देवोंमें क्रमशः ४-५-१४-४ गुण-
न नामों सहित कहे गये हैं।

इन २४ से २८ तक के पांच सूत्रोंमें औदायिकादि भाव-
गतियोंका अस्तित्व और उन भावगतिवाले जीवोंमें गुण-
स्थानोंका अस्तित्व कहा गया है। इसके अलावा इस सूत्रों
द्वारा न द्रव्यवेद कहा गया है, न ही भाववेद कहा गया और न
ही शरीर कहे गये हैं।

इस सम्बन्धमें समन्वयके लेखक प. मक्खनलालजी भाष्य
रचना करते हैं कि 'गति मार्गणामें चारों गतियोंके जीवोंका
वर्णन है। उसमें नारकी तिर्यंच मनुष्य और देव इन चारों शरीर
पर्यायों का समावेश है।- पेज १८ पंक्ति १०।

नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार शरीर पर्यायें
हैं ऐसा किसी शास्त्रमें देखा नहीं गया है। इस विषयमें लेखक-
महोदयको शास्त्राधार सामने रखना चाहिए था, शरीरपर्यायें
पांच हैं औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण। जो
इन सूत्रोंद्वारा कही नहीं गई हैं।

शरीर पर्यायोंके समावेश को कोई रोकता नहीं है। जब कि

के उक्त भा[illegible] । [illegible]
परन्तु वे [illegible] ।

इन्द्रियों की अपेक्षा एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौ-
न्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय [illegible] प्रकारके जीव
हैं। एकेन्द्रियजीव बादर और सूक्ष्म ऐसे दो प्रकारके होते
बादर दोतरहके होते हैं पर्याप्त और अपर्याप्त, सूक्ष्म दो
होते हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। बेइन्द्रियजीव दोप्रकारके
हैं पर्याप्त और अपर्याप्त, तेइन्द्रियजीव दोप्रकारके होते हैं प
और अपर्याप्त, चौइन्द्रिय जीव दोप्रकारके होते है पर्याप्त
अपर्याप्त, पंचेन्द्रिय दो प्रकारके होते हैं संज्ञी और असंज्ञी,
दोप्रकारके होते हैं पर्याप्त और अपर्याप्त तथा असंज्ञी
दोप्रकारके होते हैं पर्याप्त और अपर्याप्त। एकेन्द्रिय, बेइ
तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन जीवों के
मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। असंज्ञी पंचेन्द्रियों को
लेकर अयोगिकेवली तकके जीव पंचेन्द्रियजीव होते है।
ऊपर अनिन्द्रिय सिद्ध परमात्मा होते हैं।

सूत्र नं. २२ से २८ तक के छह सूत्रों में इन्द्रियं
अपेक्षा जीवोंके उक्त भेद-प्रभेद कहे गये हैं। सूत्र
'इंदियाणुवादेण' यह पद दिया गया है जिसका अर्थ हो
इन्द्रियोंकी अपेक्षा जीवोंका कथन किया जाता है या लक्षण
जाता है। इससे मालूम होता है स्वयं जीव ही एवं
दोइन्द्रिय आदि होते है।

समन्वयके लेखक कहते हैं कि 'इन्द्रियमार्गणामें एके-न्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि इन्द्रिय सम्बन्धी शरीर रचना का कथन है' पृ. १९ पंक्ति १ ।

इन्द्रियमार्गणाका कथन ३३ से ५८ तक ... किया गया है जिनका हवाला आश्रय ऊपर दिया गया है । जिन्हें सन्देह हो वे मूलसूत्रोंको देख सकते हैं और उन्हें देखकर सन्देहकी निवृत्ति कर सकते हैं कि उन सूत्रोंमें एकेन्द्रिय आदि जीव व उनके भेद–प्रभेद कहे गये हैं या उनके इन्द्रियसम्बन्धी शरीररचनाका कथन किया गया है । उक्त सूत्रोंमें शरीरका तो नाम–निशान भी नहीं दिख रहा है । आचार्यमहाराजने सूत्र नं. २ में चौदह गुणस्थानोंके अन्वेषण रूप प्रयोजनके होनेपर उनमें चौदह ही जीवस्थानो के कहनेकी प्रतिज्ञा की है उसके विरुद्ध यह शरीर रचना कहांसे आगई । इससे मालूम होता है कि पं. मक्खनलालजीने अपेक्षाको जलाञ्जलि दे डाली है और प्रकृतको छोड़कर अप्रकृतकी ओर प्रधावन कर डाला है ।

सब कथन प्रायः आपेक्षिक होते हैं । जिस अपेक्षासे जो कथन किया जाता है वही अपेक्षा वहां ली जाती है । यदि भिन्न अपेक्षा का आश्रय लिया जायगा तो वह कथन कभी भी सत्य नहीं ठहरेगा । जैसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें 'मिच्छे खलु ओदइओ' इस सूत्र द्वारा एक मिथ्यात्वनामका औदयिकभाव कहा गया है वह इसतरह असत्य ठहराया जासकता है कि मिथ्यात्वगुणस्थानमें जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये पारिणामिक भाव भी तो

होते हैं और मतिअज्ञानादि क्षायोपशमिक भाव भी तो होते हैं।
एक औदयिकभाव ही कैसे हो सकता है। दर असलमें
भाव भी होते तो हैं ही। फिर भी ये नही कहे गये हैं, इस
कारण यह है कि पारिणामिक और क्षायोपशमिक भावोसे मिथ्या
गुणस्थान नही होता है किन्तु मिथ्यात्त्वगुणस्थान मिथ्यात्वना
औदायिकभावसे ही होता है। इसलिए दर्शनमोहनीयके उदय
की अपेक्षासे एक मिथ्यात्वनामका औदयिकभाव ही मिथ्या
गुणस्थानमें प्रधानतासे कहा गया है। ठीक इसीतरह इन्द्रिय
प्रकरणके इन सूत्रोंमें इन्द्रियजातिकी अपेक्षा एकेन्द्रियजाति
नामकर्मके उदयवाले एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रियजातिनामकर्मके उद
यवाले द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रियजातिनामकर्म के उदयवाले
त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय नामकर्मके उदयवाले चतुरिन्द्रिय
पचेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयवाले पंचेन्द्रिय और इन पांचो जाति
नामकर्मो के उदयसे विरहित अनिन्द्रिय जीव कहे गये है। य
ही इन जीवो का असाधारण लक्षण है जो परस्परमें एक दूसरे
नही पाया जाता है और अपने अपने सब भेद–प्रभेदो में व्य
भी है। शरीर एकेन्द्रियादि जीवो का असाधारण स्वरूप नहीं है
क्योंकि शरीर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रियादि सभी जीवो में पाया जाता
और न ही सब एकेन्द्रियादि जीवो में पाया जाता है। विग्र
गतिमें एकेन्द्रियादि जीवो के शरीर नही है तो भी वे एकेन्द्रि
यादि जातिनामकर्मोके उदयके वशवर्ती होनेसे एकेन्द्रिय आदि
कहे हैं। गधेको छोड़ पदकी आश करना उचित नहीं

पेक्षा भी कोई वस्तु होती है उसे छोड़ अनपेक्ष की ओर उठ-ना कथमपि श्रेयस्कर नहीं है। प्रधानता यहापर एकेन्द्रियादि जीवोंके प्रतिपादन की है न कि शरीरोंकी रचना की। शरीरोंकी रचना शरीरनामकर्मके उदयसे होती है। जो यहां कही नहीं गई है।

कायकी अपेक्षासे पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजःकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक और अकायिक एवं सात प्रकारके जीव होते हैं। पृथिवीकायिक जीव बादर और सूक्ष्म, बादरजीव पर्याप्त और अपर्याप्त तथा सूक्ष्मजीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं. इसीप्रकार अप्कायिक. तेज कायिक और वायुकायिक जीव चार चार प्रकारके होते हैं। वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकारके होते हैं प्रत्येकशरीर और साधारण, प्रत्येकशरीर जीव पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो तरहके होते हैं, साधारणशरीर जीव बादर—सूक्ष्म और हरएक पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। त्रसकायिकजीव पर्याप्त और अपर्याप्त इसप्रकार दो तरहके होते हैं। पृथिवीकायिकादि पांचकायिक जीवोंके एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। दोइन्द्रियोंको आदि लेकर अयोगिकेवलि पर्यन्तके जीव त्रसकायिक होते हैं। बादरएकेन्द्रियोंको आदि लेकर अयोगिकेवलीतकके जीव बादरकायिक होते हैं। इनसे ऊपरके जीव अकायिक होते हैं।

सूत्र नं ३९ से ४६ तकके सात सूत्रोंमें कायकी अपेक्षा जीवोंके भेद—प्रभेद कहे गये हैं। यहापर भी कायकी अपेक्षा जीव

होते हैं और कौन कौनसे योग नहीं होते हैं। यह कथन योग-मार्गणामें है। पर्याप्तियों और अपर्याप्तियोका उदय विग्रहगतिके प्रथम समयसे ही प्रारंभ हो जाता है परन्तु शरीरोका उदय विग्रहगतिके बाद होता है। इससे ज्ञात होता है कि पर्याप्तियां और अपर्याप्तिया जीवोंकी ही परिणतिविशेष हैं न कि शरीरोंकी।

छ पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ। ७०। सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठित्ति। ७१।

पंच पज्जत्तीओ पंच अपज्जत्तीओ। ७२। बीइंदियप्पहुडि जाव असण्णिपंचिंदिया त्ति। ७३।

चत्तारि पज्जत्तीओ चत्तारि अपज्जत्तीओ। ७४। एइंदियाण। ७५। —सत्प्ररूपणा पे. ३१२-१३-१४।

इन सूत्रों द्वारा पर्याप्तियां और अपर्याप्तिया जीवोका ही खास धर्म कही गई हैं। यदि पर्याप्तियां और अपर्याप्तिया शरीरोकी पूर्णता और अपूर्णताका नाम है तो सूत्रोका अर्थ यह होगा कि छह पर्याप्तिया और छह अपर्याप्तिया संज्ञी मिथ्यादृष्टिरूप शरीरोंसे लेकर असयतसम्यग्दृष्टिरूप शरीरो तक होती हैं इत्यादि, संज्ञी मिथ्यादृष्टिरूप शरीर, असंयतसम्यग्दृष्टिरूप शरीर तो न आगममें देखे ही गये हैं और न सुने ही गये हैं। आगममें क्वचिज्जीवविशेषे षडेव पर्याप्तयो भवन्ति, क्वचित्पंचैव भवन्तीति, केषुचित्प्राणिषु चतस्र एव पर्याप्तयोऽपर्याप्तयो वा भवन्ति, चतुर्णामपि पर्याप्तीनामधिपतिजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमिह, इत्यादि अनेकों वाक्य देख जाते हैं जिनमें पर्याप्तिया और

अपर्याप्तियां नामके धर्म जीवोंमें कहे गये हैं । शरीर जीवोंके
है, एतावता जीवोके गुण या धर्म शरीरोके नहीं हो जाते।
जाते हैं तो केवलज्ञानादि गुण भी शरीरोके कहे जा सकें
शरीरोका और जीवोका परस्पर एक क्षेत्रावगाह होते हुए
शरीरोके धर्म शरीरोके होगे न कि जीवोके और जीवोंके
जीवोके होगे न कि शरीरोके । अतः गति, इन्द्रिय, काय,
और पर्याप्तिया-अपर्याप्तिया ये धर्म जीव और शरीरोका
क्षेत्रावगाह होते हुए भी जीवोके है । जिसतरहकी वेद,
ज्ञान, संयम, दर्शन आदि जीवोके धर्म है । 'आदिकी
मार्गणाओमें द्रव्यशरीरकी मुख्यतासे वर्णन है' यह कथन वि
पोच कथन है । द्रव्यशरीरोकी मुख्यता तो जब हो सकती
यदि गत्यादिधर्म शरीरोमें कहे जाते । गत्यादिधर्म शरीरोंमें
कर जीवोमें ही कहे गये हैं, अतः जीवोकी ही इन
मार्गणाओमें मुख्यता है । शरीरोंमें जीवविपाकी कर्मोदयजन्य
धर्म सम्भव भी नहीं है ।

ग[illegible]जीवभेदं देहादिपोग्गलाण भेदंच ।
ग[illegible]परिणमणं कुणेदि णामं अणेयविहं ॥ १ ॥

—गो० कर्मकाण्ड

[illegible] नामकर्मका [illegible] गया है । गति जाति
[illegible] भेदोको, शरीरादिपुद्गलके भेदोको, एक गतिमें [illegible]
[illegible] नामकर्म करता है जो कि नामकर्म [illegible]
[illegible] ।

इस गाथासूत्रमें जीवविपाकी नामकर्मके द्वारा संपादित गति, जाति, आदि जीवोंके भेद ही कहे गये हैं। न कि गति, जात्यादि, शरीरोंके भेद। जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी कितने ही कर्म एक साथ उदयापन्न होते हुए भी अपने अपने भेदोंमें ही अपना अपना कार्य करते हैं। यदि वे कभी ऐसा न कर एक दूसरेके विषयको करने लगेंगे तो उनकी कोई कीमत ही न रहेगी। अस्तु, इत्यादि भेद जीवके हैं, पुद्गल–शरीरके नहीं हैं यह बात सिद्धान्त सिद्ध है। इसलिए गतिजात्यादिकके अस्तित्व–कथनपरसे शरीरोंकी रचना कहना धोखाधड़ी है। क्योंकि गति, जाति आदि जीवविपाकी नामकर्मोंके उदयसे जीव ही नारकादि गतियों रूप, एकेन्द्रियादि जातियों आदि रूप परिणमते हैं उन मार्गणाओंके स्वरूपकथनमें शरीरोंकी मुख्यता दूर रहे उनकी गौणता भी नहीं है।

आगे सूत्र नं. ७०. से १०० तक चारों गतिके जीवोंमें गुणस्थानोंको लेकर पर्याप्तता–अपर्याप्तता कही गई है। यह कथन भी शरीरनिरपेक्ष जीवोंमें ही किया गया है। शरीरोंका इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। द्रव्यवेदका सम्बन्ध तो और भी दूरोत्सारित है।

इस क्रमवर्णनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सूत्रोंमें जीवोंका उनके धर्मोंको लेकर मुख्यतया वर्णन है या शरीरोंको लेकर शरीरोंका मुख्यतया कथन है। अतः 'यह निरूपण शरीर सम्बन्धसे है, द्रव्यशरीरके विना भाववेदका निरूपण अशक्य

तिर्यंचअपर्याप्तोंमें ७१ का उदय है इनमें १३ को मिला देने पर ८४ प्रकृतिया हो जाती हैं, इनमें से अंगोपांगादि चार कम कर देने पर एकेन्द्रियोंमें उदय योग्य प्रकृतियां ८० होती हैं। इन ८० में अंगोपाङ्ग नहीं है। इतना ही नहीं किन्तु खास-कर अलग कर दिया गया है। अंगोपाङ्गके उदयके बिना एकेन्द्रियों में द्रव्यवेद कहांसे कूद पड़ेगा। अत स्पष्ट है कि एकेन्द्रियोंमें द्रव्यवेद नहीं है, भाववेद ही है। तथा द्रव्यशरीर है और द्रव्यवेद नहीं है। इसमे पं. मक्खनलालजीके उक्त दोनो मन्तव्योंकी खासा अन्त्येष्टि हो जाती है। अतः पं. मक्खनलालजीका सारा समन्वय दोषपूर्ण है और आगमविरुद्ध है यह कहदेना अत्युक्ति पूर्ण नहीं है।

इस क्रमवर्णनमे स्पष्ट है कि आदिकी चार मार्गणाओंमें द्रव्यका कथन नहीं है। केवल गति जाति, काय और योग इन चार भावोंका कथन है। इन्हीं भाववाले जीवोंके गुणस्थान कहे गये हैं और इन्हीं चार भाववाले जीवोंके पर्याप्तिया और अपर्याप्तियां कही गई हैं। इन्हीं जीवोंके ही आगेकी वेदादिभावमार्गणाएं कही गई हैं एक ही जीवमें एकही समयमें ये चौदह मार्गणाएं सामान्यतः होती हैं। ये सब मार्गणाएं भाव मार्गणाएं हैं।

[illegible]

[illegible] पर्याप्त [illegible] जीव हैं जो [illegible] हैं। [illegible] पृथिवी [illegible] [illegible] निगोद [illegible] [illegible] और [illegible] असंख्यात हैं, साधारण वनस्पति [illegible] प्रकारके जीव अनन्त हैं और चारों प्रकारके निगोद जीव उनसे भी अनन्तगुणे हैं। इन सबके द्रव्यशरीर तो होता है परन्तु द्रव्यवेद इनके नहीं होता है। इसीतरह भावनपुंसकवेद इनके होता है। क्योंकि 'णउंसगवेदा एइंदियप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति' यह सूत्र एकेन्द्रियोंमें भाववेदका विधान करता है। द्रव्यवेद योनि-मेहन-व्यतिरिक्त अंगोपाङ्ग नामकर्मके उदयसे होता है। एकेन्द्रिय जीवोंमें किसी भी प्रकारके अंगोपाङ्ग का उदय नहीं है। यथा—

तिरियअपुण्णं वेगे परघादचउक्क–पुण्ण–साहरणं।
एइंदिय–जस–थीणति–थावरजुगलं च मिलिदव्वं॥ २०६॥
रिणमंगोवगतसं संहदि–पंचक्खमेव————————।

—गो. कर्मकाड

अर्थात् एकेन्द्रियोंमें तिर्यचपंचेन्द्रियअपर्याप्तके समान ही उदययोग्य प्रकृतिया हैं परंतु उनमें परघातचतुष्क, पर्याप्ति, साधारण, एकेन्द्रियजाति, यशःकीर्ति, स्त्यानगृद्धिआदितीन और स्थावर-युगल इन तेरह को मिलाना और अंगोपाग, त्रस, सहनन और पंचेन्द्रियजाति इन चारको कम करना।

तिर्यंचअपर्याप्तो में ७१ का उदय है उनमें १३ को मिला देने पर ८४ प्रकृतिया हो जाती है. इनमें से अंगोपांगादि चार कम कर देने पर एकेन्द्रियो मे उदय योग्य प्रकृतियां ८० होती हैं। इन ८० में अंगोपाङ्ग नही है। इतना ही नहीं किन्तु खास-कर अलग कर दिया गया है। अंगोपाङ्गके उदयके विना एकेन्द्रियों में द्रव्यवेद कहासे कूद पडेगा। अत स्पष्ट है कि एकेन्द्रियो में द्रव्यवेद नहीं है, भाववेद ही है। तथा द्रव्यशरीर है और द्रव्यवेद नहीं है। इससे पं. मक्खनलालजीके उक्त दोनो मन्तव्योकी खासा अन्त्येष्टि हो जाती है। अत पं. मक्खनलालजीका सारा समन्वय दोषपूर्ण है और आगमविरुद्ध है यह कहदेना अत्युक्ति पूर्ण नहीं है।

इस क्रमवर्णनमे स्पष्ट है कि आदिकी चार मार्गणाओंमें द्रव्यका कथन नही है। केवल गति जाति, काय और योग इन चार भावोका कथन है। इन्ही भाववाले जीवोंके गुणस्थान कहे गये हैं और इन्ही चार भाववाले जीवोके पर्याप्तिया और अपर्याप्तिया कही गई हैं। इन्हीं जीवोके ही आगेकी वेदादिभावमार्गणाएं कही गई हैं एक ही जीवमें एकही समयमें ये चौदह मार्गणाएं सामान्यत होती है। ये सब मार्गणाएं भाव मार्गणाएं हैं।

१०५ वें सूत्रमें नारकी अपने चारो गुणस्थानोमें शुद्ध नपुंसक लिंगी होते हैं। यह कहा गया है। इस सूत्रके द्वारा जो नारकी सूत्र नं. २४ में अस्तित्व रूपसे कहे गये हैं और जिनके २५ वें सूत्र द्वारा चार गुणस्थान कहे गये हैं वे ही नारकी अपने चार गुणस्थानोमें शुद्ध भाव नपुंसक वेदी कहे गये हैं। शुद्धका अर्थ यह है कि नारकियोंके नपुसकवेदके सिवा और कोई वेद नहीं होता है।

१०६ वें सूत्रमें कहा गया है कि एकेन्द्रिय जीवोंसे लेकर चतुरिन्द्रिय तकके जीव शुद्ध नपुंसकलिंगी होते हैं। इनमें भी और कोई दूसरा वेद नहीं होता है। असंज्ञीपंचेन्द्रियोंको आदि लेकर संयातसंयत नामके पंचम गुणस्थान तकके तिर्यंच तीनों भाववेदवाले होते हैं। ऐसा सूत्र १०७ में कहा गया है। इन दोनो सूत्रोद्वारा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय असंज्ञि–संज्ञिपंचेन्द्रिय तिर्यंच इन सबमें चारित्रमोहोदयजन्य भाववेद कहा गया है। ये एकेन्द्रियादि भेद भी वे ही हैं जो गतिमार्गणामें तिर्यग्गतिके रूपसे और इन्द्रियमार्गणामें इन्द्रियोंके रूपसे कहे गये हैं।

सूत्र नं. १०६ की व्याख्यामें द्रव्यवेदको लेकर यह एक शंका उठाई गई है कि "एकेन्द्रिय जीवोंके द्रव्यवेद उपलब्ध नहीं होता है तब उस द्रव्यनपुंसकवेदका उनमें सत्त्व कैसे है? इसका खास एक उत्तर यह दिया गया है कि उन एकेन्द्रियोंमें

द्रव्यवेद उपलब्ध नहीं होता है तो मत होओ, क्योंकि द्रव्यवेदका यहांपर प्राधान्य नहीं है।" यथा—

एकेन्द्रियाणां न द्रव्यवेद उपलभ्यते, तदनुपलम्भात् कथ तस्य तत्र सत्त्वमिति चेत् ? माभूत्तत्र द्रव्यवेदस्तस्यात्र प्राधान्याभावात् ।

इस शंका—समाधान द्वारा एकेन्द्रियोंमें द्रव्यवेदके प्राधान्यका निषेध करदिया है। यद्यपि शंका—समाधान एकेन्द्रियोंके विषयमें है तो भी इस प्रकरणमें द्रव्यवेदकी प्रधानताका अभाव सर्वत्र हो जाता है। क्योंकि 'अत्र' पदके द्वारा इस प्रकरणमें द्रव्यवेदके प्राधान्यका निषेध किया गया है।

सूत्र नं. १०८ में कहा गया है कि मिथ्यादृष्टिको आदि लेकर अनिवृत्ति तकके नौगुणस्थानवाले मनुष्य तीनों वेदवाले होते हैं। १०९ मे कहा गया है कि अनिवृत्तिसे ऊपरके गुणस्थानवाले मनुष्य अपगतवेद होते हैं। ये भी वे ही मनुष्य हैं जो सूत्र २३ में अस्तित्व रूपसे कहे गये हैं और सूत्र नं. २७ में जिनके १४ गुणस्थान कहे गये हैं। उन्ही गुणस्थानों में से नैवें तकके नौगुणस्थानो में तीनो भाववेदवाले और नैवें अवेदभागसे लेकर चौदहवें तक अपगतवेदवाले कहे गये हैं।

सूत्र नं. ११० के द्वारा देव अपने चारों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेदवाले होते हैं। यह कहा गया है। ये व भी वे ही हैं जो सूत्र २३ में अस्तित्व रूपसे कहे गये हैं

और जिनके सूत्र नं. २८ में चार गुणस्थान कहे गये हैं वे ही देव भावस्त्रीवेदी और भावपुरुषवेदी कहे गये हैं।

गतिमार्गणामें नं. २३ सूत्रमें जिन गतियोंका अस्तित्व कहा है, और २५–२६–२७–२८ सूत्रोमें जिनके गुणस्थान कहे गये हैं उन्ही गतिवाले और गुणस्थान वाले जीवोंके सूत्र नं. १०५ से ११० तकके छह सूत्रो द्वारा भाववेदकी विधि कही गई है। तात्पर्य, चारो गतियोंके जीव इन सूत्रो द्वारा भाववेदी कहे गये हैं और धवलाकारने भी यह स्पष्ट कर दिया है कि भाववेद यहांपर अधिकृत–प्रधान है, द्रव्यवेद न अधिकृत है और न प्रधान ही है। द्रव्यवेद यहांपर प्रधान माना जायगा तो नौवें तक तीनों द्रव्यवेद और अपगतवेदसे द्रव्यवेदसे अपगत माना जायगा, जो सर्वथा दि. जैन आगमके विरुद्ध जा पड़ेगा, उद्धरण ऊपर दिये गये हैं। इस सब कथनसे गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चारो मार्गणावाले जीवोंमें भाववेदकी विधि और द्रव्यवेदका निषेध बखूबी हो जाता है। अब देखें द्रव्यवेदियोंके नेताओका ऊंट किस करवट बैठता है। जोकि द्रव्यवेदी नेता यह कहते नहीं हिचकिचाते है कि ' नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार शरीर पर्यायें सूत्र नं. २३ के द्वारा कही गई हैं और गति, इन्द्रिय, काय और योग मार्गणाओमें भाववेदकी गन्ध भी नही है। ' द्रव्य-वेदी सोचें समझें विचारें कि आदिकी चारमार्गणाओंमें द्रव्यवेदकी गन्ध नही है या भाववेदकी गन्ध नहीं है। इस सब कथन परसे

[illegible]

वेदाणुवादेण इत्थिवेदो पुरिसवेदो णवुंसयवेदो णाम कधं भवदि ? चारित्तमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण । अवगदवेदो णाम कधं भवदि ? उवसमियाए लद्धीए खइयाए लद्धीए वा । सु. [illegible] ७

यहां पर भी भाववेद ही लिया गया है । योनि–मेहनादि द्रव्यलिंग तो कहे ही नहीं गये हैं । इससे भी वेदमार्गणा भाव मार्गणा ही साबित होती है । क्योंकि चारित्रमोहके उदयसे वेदोंका होना और औपशमिकलब्धिसे वेदोंका अभाव होना ये दोनों बातें भाववेदमें ही घटित होती हैं ।

इन सूत्रोंकी व्याख्यामें एक शंका—समाधान है वह इसप्रकार है—

इत्थिवेददव्वकम्मजणिदपरिणामो किमित्थिवेदो वुच्चदि, णामकम्मोदयजणिदथण – जहण–जोणिविसिट्ठसरीरं वा । ण ताव सरीरमेत्थित्थिवेदो, ‘ चारित्तमोहोदएण वेदाणमुप्पत्ति परूवेमो त्ति ’ एदेण सुत्तेण सह विरोहादो, सरीराणमवगदवेदत्ताभावादो वा । ण पढमपक्खो, एक्कम्हि

कज्जकारणविरोहादो ? एत्थ परिहारो वुच्चदे—ण विदिय-पक्खो, अणुब्भुवगमादो। ण च पढमपक्खम्मि वुत्तदोसो संभवदि, परिणामादो परिणामिणो कथंचि भेदेण एयत्ताभावादो। कुदो ? चारित्तमोहणीयस्स उदओ कारणं कज्जं पुण तदुदयविसिट्ठो इत्थिवेदसण्णिदो जीवो, तेण पज्जाएण तस्सुप्पज्जमाणत्तादो ण कज्जकारणभावो एत्थ विरुज्झदे। एवं सेसवेदाणं पि वत्तव्वं। सेसा वि भावा एत्थ संभवंति तेहि भावेहि वेदाणं णिद्देसो किण्ण कदो ? ण, वेदणिबंधणपरिणामस्स खओवसमियादिपरिणामाभावा, वेदविसिट्ठजीवदव्वट्ठियसेसभावाणं पि तिवेयसाहरणाणं तद्धेतुत्तविरोहादो।

इसका आशय यह है कि स्त्रीवेद नामक द्रव्यकर्मसे जनित वेदपरिणाम क्या स्त्रीवेद कहा जाता है या नामकर्मोदयसे जनित स्तन–जघन–योनिविशिष्ट शरीर स्त्रीवेद कहा जाता है। शरीर तो यहांपर स्त्रीवेद नहीं कहा जासकता। क्योंकि 'चारित्रमोहके उदयसे वेदोंकी उत्पत्तिका प्ररूपण करते हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है। दूसरी बात यह है कि इस पक्षके स्वीकार करनेसे शरीरी जीवोंके अपगतवेदताका अभाव हो जायगा। प्रथम पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि स्त्रीवेद द्रव्यकर्म जनित परिणाम को स्त्रीवेद कहनेसे कार्यकारणका विरोध आता है ? यह हुई शंका, इसका परिहार आचार्य करते हैं—दूसरा पक्ष यहांपर स्वीकार नहीं किया गया है कि नामकर्मके उदयसे उत्पन्न हुआ स्तन, जघन, योनि-

दोकी उत्पत्तिके कारण नहीं हैं। यह बात भी दूसरी शंकाके माधान द्वारा स्पष्ट करदी गई है। अतः निश्चित है कि षट्ख- ागमके मार्गणा प्रकरणमें भाववेद ही लिया गया है। इसकारण दमार्गणा भी भावमार्गणा ही है।

खुद्दाबंधमें एक जीवकी अपेक्षा चौदह मार्गणाओंमे जघन्यो- कृष्ट काल कहा गया है। उसमें से वेदोका जघन्योत्कृष्ट काल हां देते है। जिससे मालूम होगा कि यह काल भाववेदोका है, व्यवेदोका नही है। इससे भी भाववेदकी ही सिद्धि होती है।

वेदके अनुवादसे स्त्रीवेद कितने कालतक होता है? जघन्यसे क समय तक और उत्कर्षसे पल्योपमशतपृथक्त्व पर्यन्त होता । यथा—

वेदाणुवादेण इत्थिवेदा केवचिरं कालादो होंति। जह- ण्णेण एगसमओ उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्त।

पुरुषवेद कितने कालतक होते हैं? जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कर्षसे सागरोपमशतपृथक्त्व तक होते हैं। यथा—

पुरिसवेदा केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण अंतो- मुहुत्तं उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्त।

नपुसकवेदसे युक्त जीव कितने कालतक होते हैं? जघन्यसे एक समयतक और उत्कर्षसे अनन्तकाल अर्थात् असख्यात पुद्गल- परिवर्तन पर्यन्त होते हैं। यथा—

णउंसयवेदा केवचिरं कालादो होंति? जहण्णेण एग- समओ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।

अपगतवेद कितने कालतक होते हैं ? उपशमश्रेणिकी अ
जघन्यसे एक समय तक और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्ततक अपग
होते हैं। क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्
कुछ कम पूर्वकोटी तक अपगतवेद होते हैं। यथा—

अवगदवेदा केवचिरं कालादो होंति ? उवसमं पड़
जहण्णेण एयसमओ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं। खवगं पड़
जहण्णेण अंतोमुहुत्तं उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।

पगतवेदका जघन्योत्कृष्ट काल उपलब्ध होता है। क्षपकश्रेणिमें
पगतवेदका काल अन्तर्मुहूर्त है। कोई जीव अपनी आयुके
न्तिम अन्तर्मुहूर्त में क्षपकश्रेणि चढ़कर नौवेंके अवेदभागमें अप-
तवेद होकर उसी एक अन्तर्मुहूर्तमें सब गुणस्थानोको पार कर
क्त होगया। दूसरा जीव अन्तमुहूर्त अधिक आठवर्ष के अनन्तर
यमधारणकर क्षपकश्रेणि चढ़ा वहा अपगतवेद होकर शीघ्र ही
रहवें में जा पहुंचा, वहा इतने काल कम पूर्वकोटी तक जीवित
इकर परिनिर्वृत हो गया एवं कुछ कम पूर्वकोटी तक वह जीव
पगतवेद रहा। यह सब अपगतवेदता भाववेदकी होती है,
व्यवेदमें यह अपगतवेदता नहीं होती। वेदोका उत्कृष्ट काल भी
ाववेदीमें ही घटित होता है इस लिए सर्वत्र मार्गणाओमें और
भी अनुयोगद्वारोमें भाववेदका ही बोलबोला है। जहा कोई
थन भाववेदकी तरह द्रव्यवेदमें भी घटित हो जाता हो तो भी
र असलमें वह भाववेदकी अपेक्षा ही कथन है ऐसा समझना
ाहिए। इसका मुख्य कारण अपगतवेदता है। वह द्रव्यवेदमें
ही होती है। खैर, कुछ भी हो ऊपरके प्रकरणसे वेदमार्गणा
ाववेदमार्गणा है यह सुनिश्चित होता है।

वेदनाखंडमें तीनो वेदवाले मनुष्योके नरकायुका और देवा-
ुका उत्कृष्ट स्थिति काल तेतीसागरका कहा गया है यह उत्कृष्ट
स्थिति काल भाववेदो में पाया जाता है। द्रव्यवेदोंमें नही पाया
जाता। यह भी एक कार्यावलीमें विशिष्ट कार्य है। लेख बढ़नेके
भयसे उसका उद्धरण यहा नहीं दिया गया है। अधिक क्या कहें

आद्य पांचखंडोके सभी अनुयोग द्वारोका सम्बन्ध भावा वेदोके साथ है क्योकि द्रव्यवेदकी प्रधानताको लेक कथन घटित नही होता है ।

सभी मार्गणाएं भावमार्गणाएं हैं ।

अभी तक हमने, वेदोके कथनको ही भाववेदकी अपे हुए कहा है । परन्तु अब यह भी कह देना चाहिते हैं कि वेदका ही नही, सभी मार्गणाओका कथन भावकी अपेक्षा हुए है । क्योकि जीवट्ठाण, खुद्दाबंध और बंधसामित्त इन तीनो खंडोमें सर्वत्र भावमार्गणाएं ही कही गई हैं ।

जीवट्ठाण आठ अनुयोगद्वारोंमें विभक्त है । पहला अनु द्वार सत्प्ररूपणा नामका है । इसमें चौदह भावमार्गणाओके [illegible] भेद और उनमें यथासंभव गुणस्थान कहे गये [illegible] भावमार्गणाओके उन्ही भेदोके उन्ही गुणस्था [illegible] कही गई है । इसीतरह क्षेत्रानुगममें [illegible] स्पर्श, कालानुगममें काल, अन्तरानुगममें [illegible] और [illegible] अल्पबहुत्वानुगममें अल्पबहुत्व [illegible] है । इन अनुयोगद्वारोंमें [illegible] और उनमें गुणस्थान [illegible] मार्गणाएं हैं, [illegible]

ावे ही उनके गुणस्थान हैं। उन्हींमें उक्त आठप्रकारका
है। किं बहुना सारा जीवस्थान ही नोआगमभावरूप है।
इम आगे बतावेंगे। सन्देह हो तो जीवट्ठाण देख जाइये।

दूसरा खुद्दाबंध नामका खंड है, वह बारह अनुयोग द्वारोंमें
क है। पहला अधिकार बन्धक जीवोंका है उसमें उन्हीं
मार्गणाओंके भेदोंमें कौन बन्धक हैं और कौन अबन्धक
ह कथन है। इन्हीं बन्धक जीवोंके प्ररूपणार्थ ग्यारह अनुयोग-
और हैं। उनके नाम हैं एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्त्व, काल,
र, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, द्रव्यप्ररूपणानुगम,
नुगम, स्पर्शानुगम, नानाजीवोंकी अपेक्षासे काल, अन्तर,
भाग और अल्पबहुत्वानुगम। जीवट्ठाणके कथनमें और
ाबधके कथनमें भेद यह है कि जीवट्ठाणमें मार्गणाके भेदोंमें
गुणस्थान 'सत्प्ररूपणानुयोगद्वार' द्वारा कहे गये हैं उन गुण-
ानवर्ती जीवोंकी संख्याआदि प्ररूपणाएं कही गई हैं। खुद्दा-
में गुणस्थानोंके बिना केवल मार्गणाओंके उन्हीं भेदोंमें उक्त
ह अनुयोगद्वार कहे गये हैं। जीवट्ठाणके आठ अनुयोगद्वार
र खुद्दाबंधके बारह अनुयोगद्वार एवं बीस अनुयोगद्वारोंमें वे ही
दह मार्गणाएं हैं और वे ही उनके भेद हैं उन्हींमें उक्त बीस
ारकी कार्यावली कही गई है। सत्प्ररूपणामें अस्तित्वरूपसे कही
कौनसी मार्गणा कौनसे कर्मके उदयादिकसे होती हैं यह
मन खुद्दाबंधमें किया गया है। इन्हीं भावमार्गणाओंमें एक
वकी अपेक्षा काल अन्तर आदि कहे गये हैं। बन्धस्वामित्व-

ात्यक्षीभूत भावमार्गणास्थानोंका निर्देश आचार्यने किया है। अर्थमार्गणास्थानोंका अर्थात् द्रव्यमार्गणास्थानोंका निर्देश नहीं किया है, क्योंकि द्रव्यमार्गणास्थान देशकी अपेक्षा, कालकी अपेक्षा और भावकी अपेक्षा विप्रकृष्ट अर्थात् व्यवधित हैं इसलिए द्रव्यमार्गणास्थानोंकी प्रत्यक्षता नहीं बनती है। वे भावमार्गणास्थान चौदह ही होते हैं। मार्गणास्थानोंकी संख्या न चौदहसे कम है और न अधिक है ऐसा प्रतिषेध ही एवकारका प्रयोजन है। मार्गणा किसे कहते हैं ? सत् संख्या आदिसे विशिष्ट चौदह जीव समास जिसमें या जिससे अन्वेषण किये जाते हैं उसे मार्गणा कहते हैं। यथा—

'एत्तो' एतस्मादित्यर्थः। कस्मात् ? प्रमाणात्।—— 'इमेसिं' एतेषां। न च प्रत्यक्षनिर्देशोऽनुपपन्नः, आगमाहितसंस्कारस्याचार्यस्यापरोक्षचतुर्दशभावजीवसमासस्य तदविरोधात्। जीवाः समस्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। चतुर्दश च ते जीवसमासाश्च चतुर्दशजीवसमासाः। तेषां चतुर्दशानां जीवसमासानां चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थः। तेषां मार्गणा गवेषणमन्वेषणमित्यर्थः। मार्गणा एवार्थः प्रयोजनं मार्गणार्थस्तस्य भावो मार्गणार्थता तस्यां मार्गणार्थतायां। भवस्यामिति तत्र। 'इमानि' इत्यनेन भावमार्गणास्थानानि प्रत्यक्षीभूतानि निर्दिश्यन्ते, नार्थमार्गणास्थानानि तेषां देशकाल-स्वभावविप्रकृष्टानां प्रत्यक्षतानुपपत्तेः। तानि च मार्ग-

मकर्मके उदयसे मनुष्य होता है। देवगतिमें देव कैसे होता ?
गति नामकर्मके उदयसे देव होता है। सिद्धगतिमें सिद्ध कैसे
ता है ? क्षायिक लब्धिसे सिद्ध होता है। यथा—

गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइओ णाम कथं वदि ? णिरयगदिणामाए उदएण। तिरिक्खगदीए तिरिक्खो णाम कथं भवदि ? तिरिक्खगदीए णामाए उदएण। मणुसगदीए मणुसो णाम कथ भवदि ? मणुसगदिणामाए उदएण। देवगदीए देवो णाम कथं भवदि ? देवगदिणामाए उदएण। सिद्धगदीए सिद्धो णाम कथं भवदि ? इयाए लद्धीए।—खुद्दाबंध, एगजीवेण सामित्त।

यहां चारो गतियोंमें अपने अपने कर्मके उदयसे होनेवाले
र भाव कहे गये हैं और सिद्धोमें चारो गतियोके क्षयसे उत्पन्न
ायिक भाव कहा गया है। चारो गतिया औदयिकभाव हैं।
ो जीवोंके असाधारण भाव हैं, जीवको छोडकर अजीव अर्थात्
द्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालमें वे भाव नही पाये जाते
। शरीर और द्रव्यवेद इन कर्मोके उदयसे नही होते हैं। वे तो
रीरनामकर्म और अंगोपांगनामकर्मके उदयसे होते हैं। इन
ोनोका उदय भी ऋजुगतिवालेको छोडकर किसीके एक समय
श्चात् द्वितीयसमयमें किसीके दोसमय बाद तृतीयसमयमें किसीके
ीन समय बाद चतुर्थ समयमें होता है और इनका फल पुद्गलमें
ी होता है क्योंकि ये दोनो प्रकृतिया पुद्गलविपाकी हैं। तथा
ारो गतिया जीवविपाकी हैं, इनके उदयसे जायमान भाव

[illegible]

इन गाथाओं [illegible] ([illegible]) [illegible]
है [illegible]
[illegible] गाथाओंमें [illegible] है

ण रमंति जदो णिच्चं [illegible] खेत्ते य काल भावे य।
अण्णोण्णेहि य जम्हा तम्हा ते णारया भणिया ॥ १ ॥
तिरियंति कुडिलभावं सुविगउसण्णा णिगिट्ठमण्णाणा।
अच्चंतपावबहुला तम्हा तेरिच्छिया णाम ॥ २ ॥
मण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मणु-उब्भवा य सव्वे तम्हा ते माणुसा भणिया ॥ ३ ॥
दिव्वंति जदो णिच्चं गुणेहि अट्ठेहि दिव्वभावेहि।
भासंतदिव्वकाया तम्हा ते वण्णिया देवा ॥ ४ ॥

इन गाथासूत्रो द्वारा चारो गतिके जीवोके स्वरूप या स्वभावका वर्णन किया गया है जो कि स्वरूप या स्वभाव उनमें अपनी अपनी गतिकर्मके उदयसे उत्पन्न होता है।

तत्त्वार्थसूत्रमें औदयिकभावके २१ भेद कहे गये हैं। उनमें एक गतिनामका औदयिक भाव है। उसके चारभेद स्वयं आचार्य उमास्वामीने कहे हैं। इन इक्कीसमें एक मिथ्यात्व भी औदयिक भाव है उसके उदयसे जैसे अतत्त्वश्रद्धानात्मक भाव

होता है वैसे ही गतिकर्मके उदयसे भी जीवोंमे उक्त प्रकारका गतिनामका भाव पैदा होता है जिससे वे नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव व्यवहृत होते हैं। षट्खंडागमके प्रणेता आचार्य भी इन नारकादि भेदोको नरकगत्यादिविपाक जन्य भाव मानते हैं। यथा—

जो सो जीवभाववंधो णाम सो तिविहो विवागपच्चइयो जीवभाववंधो चेव, अविवागपच्चइयो जीवभाववंधो चेव, तदुभयपच्चइयो जीवभाववंधो चेव। १४।

जो सो विवागपच्चइयो जीवभाववंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो—सो देवेत्ति वा मणुसेत्ति वा तिरिक्खेत्ति वा णेरइएत्ति वा इत्थिवेदेत्ति वा पुरिसवेदेत्ति वा णउंसयवेदेत्ति वा कोहवेदेत्ति वा मायवेदेत्ति वा लोहवेदेत्ति वा दोसवेदेत्ति वा मोहवेदेत्ति वा किण्हलेस्सेत्ति वा णीललेस्सेत्ति वा काउलेस्सेत्ति वा तेउलेस्सेत्ति वा पम्मलेस्सेत्ति वा सुक्कलेस्सेत्ति वा असंजदेत्तिवा अविरदेत्ति वा अण्णाणेत्ति वा मिच्छादिट्ठित्ति वा जे चामण्णे एवमादिया कम्मोदयपच्चइया उदयविवागे णिप्पण्णा भावा सो सव्वो विवागपच्चइयो जीवभाववंधो णाम ॥१५॥

—मग्गणाखंड।

इन दोनों सूत्रोका भावार्थ यह है कि जीवोके भावोंका बन्ध तीन प्रकारका है विपाकप्रत्यय, अविपाकप्रत्यय और तदुभयप्रत्यय।

कर्मोंके उदयसे जन्य जीवभावबन्धके ये भेद हैं— देव—मनुष्य—तिर्यंच—नारक, स्त्रीवेद—पुरुषवेद—नपुंसकवेद, क्रोधवेद-

मानवेद–मायावेद–लोभवेद–रागवेद–दोषवेद–मोहवेद, कृष्ण–नील–कापोत–तेजः–पद्म–शुक्ललेश्या, असंयत–अविरत–अज्ञान और मिथ्यदृष्टि ये और इस प्रकारके ऐसे ही और भाव जो कर्मके उदय कारणक होते हुए उदयरूप विपाकमें निष्पन्न हैं वह सब कर्मविपाक जन्य जीवभावबन्ध है।

इस सूत्रमें भावोंकेबंधका वर्णन करते हुए अपने अपने कर्मके उदयसे होनेवाली औदयिक मार्गणा कह दी गई है। इससे स्पष्ट है कि देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक ये चार भी कर्मोदयसे जायमान अतएव उदय विपाकमें निष्पन्न जीवके भाव हैं। ऐसी हालतमें देव, मनुष्य आदि जीवभावोको शरीरपर्याय कहना आगमविपरीत है। इसी सूत्रमें तीनो वेदोको भी औदयिक भाव कहा है, द्रव्यवेदका तो इसमें कोई निशान भी नही है। यह भाववेद इन्ही चार गतिके जीवोंमें पाया जाता है। जिस द्रव्यवेदका नाम तक सूत्रोंमें नही उसकी प्रधानता कहना और जो भाववेद सूत्रद्वारा कहा गया है उसे अप्रधान कहना, इसे क्या कहा जाय विचारिये।

दूसरी इन्द्रियमार्गणा है वह भी क्षायोपशमिकभाव जन्य है। साथमें एकेन्द्रियादि जीव विपाकी जातिनामकर्मका उदय भी उसके है। अतएव दोनोंही एकेन्द्रियत्वादिके प्रति कारण हैं। खुद्दाबंधमें कहा है कि इन्द्रियोंके अनुवादसे कहते हैं कि जीव, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय किस निमित्तसे होता है? क्षयोपशमिकलब्धिसे जीव एकेन्द्रिय, द्वीइन्द्रिय,

इन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पंचेन्द्रिय होता है, इन्द्र अर्थात् आत्माके लिङ्गको इन्द्रिय कहते हैं। अनिन्द्रिय कैसे होता है? क्षायिक-लब्धिसे अनिन्द्रिय होता है। यथा—

इंदियाणुवादेण एइंदिओ बीइंदिओ तीइंदिओ चउरिंदिओ पंचिंदिओ णाम कधं भवदि? खओवसमियाए लद्धीए, इदस्स लिंगमिंदियं। अणिंदिओ णाम कधं भवदि? खइयाए लद्धीए।—खुद्दाबंध।

क्षायोपशमिक लब्धि जीव भाव है। तत्त्वार्थसूत्रमें जीवके अठारह क्षायोपशमिक भाव कहे गये हैं उनमें एकेन्द्रियादि क्षायोपशमिक लब्धियां भी अन्तर्भूत है। षट्खंडागमके पंचमखंडमें तो खूब ही विस्तारके साथ क्षायोपशमिकभाव कहा गया है। तदपि यथा—

जो सो तदुभयपच्चइयो जीवभावबंधो णाम तस्स इमो णिद्देसो-खओवसमियं एइंदियलद्धित्ति वा, खओवसमियं बीइंदियलद्धित्ति वा, खओवसमियं तीइंदियलद्धित्ति वा, खओवसमियं चउरिंदियलद्धित्ति वा, खओवसमियं पंचिंदियलद्धित्ति वा, खओवसमियं मदिअण्णाणित्ति वा, खओवसमियं सुदअण्णाणित्ति वा, खओवसमियं विहंगणाणित्ति वा, खओवसमियं आभिणिबोहियणाणित्ति वा, खओवसमियं सुदणाणित्ति वा, खओवसमियं ओहिणाणित्ति वा, खओवसमियं मणपज्जवणाणित्ति वा, खओवसमियं चक्खुदंसणित्ति वा, खओवसमियं अचक्खुदंसणित्ति वा, खओवस-

मियं ओहिदंसणित्ति वा, खओवसमियं सम्मामिच्छत्तलद्धित्ति वा, खओवसमियं सम्मत्तलद्धित्ति वा खओवसमियं संजमासंजमलद्धित्ति वा, खओवसमियं संजमलद्धित्ति वा, खओवसमियं दाणलद्धित्ति वा, खओवसमियं लाहलद्धित्ति वा, खओवसमियं भोगलद्धित्ति वा, खओवसमियं परिभोगलद्धित्ति वा, खओवसमियं वीरियलद्धित्ति वा, खओवसमियं से आयारधरेत्ति वा, खओवसमियं सुदयडधरेत्ति वा, खओवसमियं ठाणधरेत्ति वा, खओवसमियं समवायधरेत्ति वा, खओवसमियं वियाहपण्णत्तिधरेत्ति वा, खओवसमियं णाहधम्मकहाधरेत्ति वा, खओवसमियं उवासयज्झयणधरेत्ति वा, खओवसमियं अंतयडधरेत्ति वा, खओवसमियं अणुत्तरोववादियदसधरेत्ति वा, खओवसमियं पण्हवायरणधरेत्ति वा, खओवसमियं विवागधरेत्ति वा, खओवसमियं दिट्ठिवादधरेत्ति वा, खओवसमियं गणित्ति वा, खओवसमयं वाचगेत्ति वा, खओवसमयं दसपुव्वहरेत्ति वा खओवसमियं चोद्दसपुव्वहरेत्ति वा, खओवसमियं जे चामण्णे एवमादिया खओवसमिया भावा, सो सव्वो तदुभयपच्चइओ जीवभावबंधो णाम । — वर्गणाखंड.

ये सब क्षायोपशमिकभाव हैं। इनमें एकेन्द्रियलब्धि, द्वीन्द्रियलब्धि, त्रीन्द्रियलब्धि, चतुरिन्द्रियलब्धि और पंचेन्द्रियलब्धि ये पांच लब्धियां भी हैं इन्हींसे क्रमशः जीव एकेन्द्रिय होते हैं, द्वीन्द्रिय होते हैं, त्रीन्द्रिय होते हैं, चतुरिन्द्रिय होते हैं और पंचे-

:य होते हैं। ये ही पांच लब्धियां 'खुद्दाबंध' में सामान्यत:
योपशमिकलब्धि कही गई हैं। विचार कीजिये इन लब्धियोंमें
केन्द्रियादि जीवों का होना कहा गया है या 'इन्द्रियमार्गणामें
केन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि इन्द्रिय सम्बन्धी शरीर रचना का कथन'
या गया है। ग्रन्थमें एकेन्द्रिय जीव तो कहे गये हैं और लोगों
ो झूठा विश्वास दिलाया जा रहा है कि 'इन्द्रियमार्गणामें शरीर
चनाका कथन है' यह कितना अनुचित, अन्यायपूर्ण और आगम
वेपरीत वक्तव्य है। जिसका कोई मर्यादित परिमाण नहीं है।

स्पर्शनादि इन्द्रिया कैसे उत्पन्न होती हैं, इस विषयका
थन आचार्य वीरसेनने 'इन्द्रियाणुवादेण अत्थि एइंदिया'
त्यादि सूत्रमें खूब विस्तारके साथ किया है। ऐसा करके भी वे
हते हैं कि यह व्याख्यान यहां जीवट्ठाणमें प्रधान नहीं है क्योंकि
एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जाति-
नामकर्म के उदयसे एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय
और पंचेन्द्रिय होते हैं, इस भावसूत्रके साथ विरोध पड़ता है,
इसलिए एकेन्द्रियजाति नामकर्मके उदयसे एकेन्द्रिय होते हैं,
द्वीन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे द्वीन्द्रिय होते हैं, त्रीन्द्रियजातिना-
मकर्मके उदयसे त्रीन्द्रिय होते हैं, चतुरिन्द्रिय जातिनामकर्मके
उदयसे चतुरिन्द्रिय होते है और पंचेन्द्रियजातिनामकर्मके उदयसे
पंचेन्द्रिय होते है यह अर्थ यहांपर प्रधान हैं, क्योंकि यह अर्थ
यहां पर निरवद्य है। यथा—

खुद्दाबंधके पेज १८ सूत्र नौमें एक शंका उठाई गई है कि योगिकेवली और अयोगिकेवली भगवान्; जिनने केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सम्पूर्ण प्रमेय देख लिये हैं और जो इन्द्रियके व्यापारसे विरहित हैं उन्हें पंचेन्द्रिय कैसे कहा जाता है ? इसका उत्तर दिया गया है कि यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि पंचेन्द्रियनामकर्मके उदयकी अपेक्षा लेकर उनमें पंचेन्द्रियत्वका व्यपदेश किया गया है। यथा—

सजोगिकेवलि—अजोगिकेवलीणं केवलणाणदंसणेहि दिट्ठसेसपमेयाण करणवावारविरहियाणं कधं पंचिंदियत्तं ? ण एस दोसो, पंचिंदियणामकम्मोदयत्त पडुच्च तेसिं-तव्ववएसादो।

दोनो ही केवलियोंके शरीर मौजूद हैं उस शरीरमें द्रव्येन्द्रिया भी पांचो हैं। फिर भी उनको लेकर उत्तर नहीं दिया गया कि पाचों द्रव्येन्द्रियोसे युक्त उनके शरीर हैं इसलिए वे पंचेन्द्रिय होते हैं किन्तु उत्तर यह दिया गया है कि पचेन्द्रिय नामकर्मका उनके उदय है इस कारण सयोगि—अयोगि भगवान् पचेन्द्रिय होते हैं। हालाकि उनके शरीर है और शरीरमें पाचो ही द्रव्येन्द्रिया हैं।

तीसरी कायमार्गणा है। इसके मूल छह भेद हैं। छहोंकी उत्पत्ति खुद्दाबंधमें यों कही गई है। " कायके अनुवादसे जीव पृथिवीकायिक कैसे होता है ? पृथिवीकायिकनामकर्मके उदयसे होता हैं। अप्कायिकजीव कैसे होता ? अप्कायिकनामकर्मके उद-

यसे होता है । तेजः कायिक कैसे होता है ? तेजःकायिक नाम
कर्मके उदयसे होता है । वायुकायिकजीव कैसे होता है ? वायु
कायिकनामकर्मके उदयसे होता है । वनस्पतिकायिक कैसे होता
है ? वनस्पतिनामकर्मके उदयसे होता है । त्रसकायिक कैसे होता
है ? त्रसकायिकनामकर्मके उदयसे होता है । अकायिक कैसे होता
है ? क्षायिकलब्धिसे होता है । ”

यह अनुवाद मात्र है । सूत्र देखने हों तो खुद्दाबंध
‘ एगजीवेण सामित्तं ’ नामका अनुयोगद्वार देख जाइये । ले
बढ़नेके भयसे यहां नहीं लिखे गये हैं । पृथिवीकायिकसे ले
वनस्पतिकायिक तकके नामकर्म एकेन्द्रियजातिनामकर्मके अवा
भेद हैं । त्रसनामकर्म नामकर्मकी प्रकृतियोमें स्वतंत्र गिनाया
गया है । ये छहो नामकर्म जीवविपाकी हैं । इनके उदयसे
ही पृथिव्यादि पर्यायियोको प्राप्त होता है । इस कथनमें श
सम्बन्ध इन जीवोके नही कहा है । शरीर तो शरीरनाम
उदयसे होता है । उससे जीव पृथिवीकायिक आदि नहीं
है । पृथिवीकायिक आदि नामकर्म औदयिक भाव हैं । औद
भाव जीवको छोड़कर पुद्गल आदिमे नही पाये जाते हैं । इ
फल जीवको ही मिलता है । इसलिए जीव इनके उदयसे पृथि
कायिकादि रूप परिणमते हैं । शरीर रूप वे नहीं परिणमते हैं । क
[illegible] है कि इन सूत्रोद्वारा जीव ही कहे गये हैं, [illegible]
नहीं [illegible] है । अत यह मार्गणा भी नामकर्म भाव [illegible]
[illegible] है । द्रव्यरूप नहीं कही गई है ।

चौथी योगमार्गणा है। इसकी उत्पत्ति भी इस प्रकार कही। योगके अनुवादसे मनयोगवाला, वचनयोगवाला और काय-गवाला जीव कैसे होता है? क्षायोपशमिकलब्धिसे होता है। योगी कैसे होता है? क्षायिकलब्धिसे होता है। यथा,—

- **कायाणुवादेण मणजोगी वचिजोगी कायजोगी णाम थ भवदि? खओवसमियाए लद्धीए। अजोगी णाम थ भवदि? खइयाए लद्धीए।**

यह भी भावमार्गणा ही है। क्योंकि जीवके भावोंसे उत्पन्न ती है। इस मार्गणाके अवान्तर भेद भी भावरूप ही हैं, योंकि जीवके क्षायोपशमिक भावोंसे उत्पन्न होती हैं। इनके रा शरीरोंका होना नहीं कहा गया है। क्योंकि शरीर क्षयोप-मलब्धिसे नहीं होते हैं। क्षयोपशमलब्धिसे योग ही होते हैं सलिए योग ही इस सूत्रसे कहे गये हैं। काययोग भी मुख्यतः योपशमसे आत्मलाभ प्राप्त करता है औदारिकादिकाययोग सके भेद हैं। औदारिकादि शरीर इसके भेद नहीं हैं। यद्यपि रीरोंसे काययोगोंका घनिष्ट सम्बन्ध है, फिर भी औदारिकादि रीरोंके उत्पन्न होनेकी सामग्री जुदी है, उनसे औदारिकादि शरीर होते हैं। यहां वह न सामग्री कही गई है और न ही उससे जाय-मान शरीर कहे गये हैं। जीवट्ठाणमें योगोंके भेद-प्रभेदोंका अस्तित्व और उनमें गुणस्थानोंका अस्तित्व कहा गया है। 'खुद्दा-बंध' में उन्हीं योगोंकी उत्पत्तिका कारण कहा गया है। जिस परसे यह मार्गणा भी भावमार्गणा ही है।

हो भी तो उससे भी जीवभावरूप मार्गणा होगी, शरीर रूप नही होगी। क्योकि शरीरभावरूप कोई मार्गणा चौदह मार्गोंमें नहीं कही गई है। इस विषयके स्पष्टीकरणार्थ धव- लक एक शंका-समाधान यहा दिया जाता है। शंका-नरक तिर्यच, मनुष्य और देव ये गतिया यदि केवल-अकेली ही उद- य आती हो तो नरकगतिके उदयसे नारकी, तिर्यग्गतिके उदयसे तिर्यंच मनुष्यगतिके उदयसे मनुष्य और देवगतिके उदयसे देव होना युक्त हो सकता है, किन्तु अन्य प्रकृतिया भी उनमे उद- यमे प्राप्त होती हैं, उनके बिना नरक, तिर्यक् मनुष्य और देव गतिनामकर्मोंका उदय अनुपलब्ध है।

(आगे 'तद्यथा' कहकर नामकर्मकी प्रकृतियोंके चारो गतिसम्बन्धी नामसहित स्थान कहे गये हैं। नरक गतिमें २१; २५, २७, २८, २९ एवं पाच कालोमें पाच स्थान, तिर्यंचगतिमे २१, २६, २८-२९, २९-३०, ३०-३१ एवं पांच कालोमें छह स्थान, मनुष्यगतिमे २१-२०-२१, २५, २६-२६-२७-२५, २८-२८-२९-२७, २९-२९ -३०-२८, ३०-३ -३१-२९, ९, ८ एवं पाचकालोमे ग्यारह स्थान, और देवोमें २१, २५, २७, २८, २९ एवं पाच कालोमें पाच उदयस्थान होते हैं। इनमें चारो गतियोमें अपनी अपनी गतिके साथ अन्य भी नामकर्मकी प्रकृतियोका उदय है)

व चरिमसमओ त्ति णियमेण उदओ होदूण अप्पिदगइं त्तूण अण्णत्थ उदयाभावणियमो दिस्सइ तिस्से उदएण रइओ तिरिक्खो मणुसो देवोत्ति णिद्देसो कीरदे, अण्णहा णवट्ठाणादो ।

यहांपर नामकर्मकी अन्य प्रकृतियोका जिनमें कि शरीर ामकर्म और अंगोपाग नामकर्म भी है उनका उदय नारकादि- ातियोंके साथ होते हुए भी उन अन्य प्रकृतियोके उदयसे नारकी ादि होना निषेधा गया है और नरकादि चार गतियोके उदयसे ी नारकी आदि होनेका विधान किया गया है । इससे मालूम ोता है नरकगतिआदिके उदयसे ही उसके उदयपर्यन्त ही ारकी आदि व्यपदेश और नारकत्वपरिणति पाई जाती है। ारीरादि अन्य प्रकृतियोका उदय होते हुए भी नारकादिभाव ा नारकादिपर्यायें नही होती है । नामकर्मकी प्रकृतियोके पाच उदयकाल हैं । विग्रहगतिकाल, शरीमिश्रकाल, शरीरपर्याप्तिकाल, श्वासोच्छ्वासकाल और भाषापर्याप्तिकाल । इन कालोमें उन उन गतियोमें उक्त उदयस्थान होते हैं, विग्रहगतिमें जो इक्कीस प्रकृतियोंका स्थान है उसमें शरीर नामकर्म और अंगोपांग कर्मका उदय नही है । इनका उदय शरीरमिश्रकालमें आता है, शरीर नामकर्मके उदयसे जीव नोकर्मवर्गणा ग्रहण करता है और अंगो- पांग नामकर्मके उदयसे अगोपागकी रचना करता है, तथा अपनेमें स्थित यथासभव पर्याप्तिरूप शक्तिकी पूर्णता हो जानेपर उन नोकर्मवर्गणाओंको खल्रसभागादिरूप परिणमाता है तब कहीं

लेना । यहीबात एकसिरेसे गोम्मटसारकार, भास्क-
रदेव, विद्यानन्दी आदि प्रौढ आचार्य कहते हैं ।
ह सिद्ध होता है कि गत्यादिमार्गणाएं भावमार्ग-
सब आचार्योंके उद्धरण लेख बढ जानेके भयसे
तथा अन्य एकेन्द्रियादिकोंके सम्बन्धके उद्धरण भी
नही दिये है । देखना चाहें तो इनके द्वारा निर्मित
सकते हैं ।

गममें भावमार्गणाओंका कथन है, द्रव्यमार्गणाओंका
हम अधिक जोर इसलिए देते हैं कि जिन लोगोंको
द्रव्यस्त्रीमुक्तिकी गन्ध आती है, वह ग्रन्थसगत
मार्गणा साबित होनेपर तो उन लोगोंको साचिव्य
इसे खूब अच्छीतरह समझलेना चाहिये ।

आठअनुयोगद्वार भी भावजीवोंमें कहे गये हैं ।

ग जाननेके लिए उपक्रम, निक्षेप, नय और
आवश्यकता है । जी द्वाणका स्वरूप जान-
का उपयोग किया गया है । इनमेंसे उप-
आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और
- तीन भेद हैं । इनमेंसे पूर्वानुपुर्वीकी

भी योजना करलेना । यहीबात एकसिरेसे गोम्मटसारकार, भास्क-रनन्दी, अकलंकदेव, विद्यानन्दी आदि प्रौढ आचार्य कहते हैं। अत: निःसन्देह सिद्ध होता है कि गत्यादिमार्गणाएं भावमार्गणाएं हैं। इन सब आचार्योंके उद्धरण लेख बढ जानेके भयसे नहीं दिये हैं। तथा अन्य एकेन्द्रियादिकोंके सम्बन्धके उद्धरण भी इसी हेतुसे नहीं दिये है। देखना चाहें तो इनके द्वारा निर्मित ग्रन्थोंमें देख सकते हैं।

षट्खंडागममें भावमार्गणाओंका कथन है, द्रव्यमार्गणाओंका नहीं है इसपर हम अधिक जोर इसलिए देते हैं कि जिन लोगोंको षट्खंडागममें द्रव्यस्त्रीमुक्तिकी गन्ध आती है, वह ग्रन्थसंगत नहीं है। द्रव्यमार्गणा साबित होनेपर तो उन लोगोंको साफल्य प्राप्त होगा। इसे खूब अच्छीतरह समझलेना चाहिये।

जीवट्ठाणके आठअनुयोगद्वार भी भावजीवोंमें कहे गये हैं।

ग्रंथोंका स्वरूप जाननेके लिए उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इन चारकी आवश्यकता है। जीवट्ठाणका स्वरूप जाननेके लिए भी इन चारका उपयोग किया गया है। इनमेंसे उपक्रमके पांच भेद हैं आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। आनुपूर्वीके तीन भेद हैं। उनमेंसे पूर्वानुपूर्वीकी

निक्षेप नामजीवस्थान, स्थापनाजीवस्थान, द्रव्यजीवस्थान, और भावजीवस्थानके भेदसे चार प्रकारका है। उनमेंसे यहापर ' नो आगमभाव जीवस्थान ' प्रकृत है। नो आगमभाव जीवस्थान किसे कहते हैं ? इस सम्बन्धमें भी कहते है कि नो आगमभावजीवस्थान मिथ्यादृष्टि आदि चौदह जीवसमासोको कहते है। यथा—

णिक्खेवो चउव्विहो णामट्ठवणादव्वभावजीवट्ठाणभेएण।———— एत्थ णोआगमभावजीवट्ठाणं पयदं। णोआगमभावजीवट्ठाण मिच्छाइट्ठियादिचोद्दसजीवसमासा।

इस निक्षेपविधिपरसे यह जान लेना सुगम है कि जीवस्थानमें मिथ्यादृष्टि आदि चौदह भावगुणस्थानोका कथन है। इसी प्रकार गत्यादिमार्गणाओंमें भी प्रत्येकके नामगति, स्थापनागति, द्रव्यगति और भावगति इत्यादि चार चार भेद हैं। उनमेंसे नोआगमभावगति, नोआगमभाव इन्द्रियजाति, नोआगमभावरूप कायजाति और नोआगमभावरूपयोगादि चौदह मार्गणास्थान भी नोआगमभावरूप हैं। प्रमाणके लिए खुद्दाबंधका ' एगजीवेण सामित्तं ' नामका अनुयोग द्वार देख जाइये। क्योंकि यहापर गति, जाति आदि चौदह पर्यायोंसे परिणत जीवोमें यह निक्षेपविधि कही गई है। और यह भी कहा है कि यहापर मार्गणाओंमें नोआगमभावगति आदि प्रकृत हैं।

जीवट्ठाण सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम आदि आठ अनुयोगद्वारोमें विभक्त है। उसके अन्तमें नवचूलिका

नामका एक अधिकार और है। ये सब अधिकार गत्यादिनोआ-
गमभावरूप परिणत जीवोंमें कहे गये हैं। पहला सत्प्ररूपणा अधि-
कार है। इसमें चौदह सामान्य गुणस्थानोंका, चौदह मार्गणाओंका
उनके भेदोंका प्रभेदोंका और उनमें [illegible] संग गुणस्थानोंका अस्तित्व
कहा गया है। ये सब नोआगमभावरूप हैं यह ऊपर कहा जा चुका है।

द्रव्यप्रमाणानुगममें सत्प्ररूपणामें कहे गये जीवोंकी गणना
मय सामान्य-विशेष गुणस्थानोंके कही गई है। सबसे प्रथम
मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या अनन्त कही गई। धवलाकारने नामा-
नन्त आदि अनन्तके कई भेद कहे हैं। उस परसे शंकाकार
पूछता है कि इन अनन्तोंमें से कौनसा अनन्त प्रकृत है? उत्तर
दिया गया है कि गणनानन्त प्रकृत है। यथा— एदेसु अणंतेसु
केण अणंतेण पयदं? गणणाणंतेण पयदं।

इसी प्रकार सब प्रकारके एकेन्द्रियजीवोंकी, सब प्रकारके
वनस्पतिकायिकजीवोंकी और औदारिककाययोगी व औदारिक-
मिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या अनन्त अनन्त
कही है। यथा—

[illegible] मिच्छाइट्ठी [illegible] केवडिया? अणंता।
[illegible] सुहुमा पज्जत्ता अप-
[illegible] केवडिया? अणंता ॥ ७४ ॥
[illegible] सुहुमा पज्जत्ता
[illegible] केवडिया? अणंता। ७५ ।

कायजोगि–ओरालियकाय जोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं।
ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छाइट्ठी मूलोघं।

इनसूत्रोंद्वारा जिन जीवोंकी संख्या अनन्त कही गई है। जीवोंकी ही संख्या कही गई है। शरीरोंकी संख्या नहीं ी गई है। कैसे? सुनिये– मिथ्यादृष्टिजीवोंकी अनन्तराशिमें एकेन्द्रिय भी अन्तर्भूत हैं, सब वनस्पतिकायिक और निगोद- ा भी अन्तर्भूत हैं तथा औदारिककाययोगी और औदारिक- ्रकाययोगी भी अन्तर्भूत हैं। इसलिए इनमेंसे कोईसी भी न्त राशी ले लीजिये। उन सबमें अनन्तानन्त निगोदजीव भी ूढ हैं। उनके सम्बन्धमें कहा गया है कि जिन अनन्तानन्त ोका साधारण रूपसे एक ही शरीर होता है उन्हें निगोद- ा कहते हैं। यथा—

जेसिमणंताणंतजीवाणं एक्क चेव सरीरं भवदि साधा- रूवेण ते णिगोदजीवा भणंति। खंड ५ पे. ३५७।

खुद षट्खंडागमकार भी कहते हैं कि एकनिगोदसरीरमें ोदजीव द्रव्यप्रमाणसे सिद्धराशिसे व सब अतीतकालसे न्तगुणे हैं। यथा—

णिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
द्धेहि अणंतगुणा सव्वेण वि तीदकालेण ॥ १ ॥

इसपरसे यह जानलेना अतिसुगम है कि उन अनन्तराशि- ़ जीवोंके औदारिक शरीर अनन्त नहीं हैं। अन्यथा एक रके स्वामी अनन्तानन्त निगोदजीव कैसे होंगे?।

है। इनमेंसे कौनसा क्षेत्र यहांपर अधिकृत है। इस प्रश्नपूर्वक उत्तर दिया गया है कि यहांपर नोआगमद्रव्यक्षेत्र अधिकृत है। निर्देशादिककी अपेक्षा कहा गया है कि नोआगमद्रव्यक्षेत्र क्या वस्तु है? उत्तर देते हैं कि वह नोआगमद्रव्यक्षेत्र आकाश है। यथा—

एदेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयदं? णोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं। णोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं? आगासं गगणं देवपथं गेज्झकाचरिदं अवगाहलक्खणं आधेयं वियापगं आधारो भूमित्ति।

यह क्षेत्र नोआगमसे भावक्षेत्रवाले जीवोंका कहा गया है। नोआगमसे भावक्षेत्र आगमके विना अर्थोपयुक्त जीवको अथवा औदयिकादि पांचप्रकारके भावोंको कहते हैं। इन पांचप्रकारके भाववाले जीवोंका आधार आकाशक्षेत्र है ऐसा यहां समझना चाहिए। शरीर जीवोंके होते हैं इसलिए जीवोंके अवगाहके साथ साथ कहीं कहीं शरीरोंका अवगाह क्षेत्र भी आ जाता है फिर भी वह क्षेत्र शरीरोंका नही जीवोंका ही समझना चाहिए। क्योंकि शरीरोंके साथ इसका मेलजोल नहीं वैठता है।

सयोगिकेवली जिनका वर्तमान क्षेत्र निवास लोकका असंख्यातवां भाग, लोकके असंख्यात बहुभाग एवं सर्वलोक ऐसे तीन प्रकारका कहा गया है। यथा —

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे असंखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। ४।– क्षेत्रानुगम

संख्यातोऽनन्तः।—औदारिकाणि असंख्येया लोकाः वैक्रियिकाणि असंख्याताः श्रेणयः लोकप्रतरस्य असंख्येयभागः, आहारकाणि संख्येयानि चतुःपंचाशतः।—राजवार्तिक अ. २।

अर्थात् संख्याकी अपेक्षा औदारिकादिशरीरोंमें परस्पर विभिन्नता है। क्योंकि औदारिकशरीर असंख्यातलोकप्रमाण है, वैक्रियिकशरीर असंख्यातश्रेणिप्रमाण है, जो कि लोक प्रतरके असंख्यातवे भागप्रमाण है। तथा आहारकशरीर चौवनसंख्याप्रमाण हैं। इन तीनों शरीरोंकी संख्याको जोड़ दीजिये असंख्यातसे अधिक नहीं होती। किन्तु इन शरीरोंके धारक जीवोंकी संख्या अनन्त है। एकेन्द्रियजीव अनन्त, और शरीर उनके असंख्यात, वनस्पतिकायिकजीव अनन्त और शरीर उनके असंख्यात, तथा औदारिककाययोगी जीव अनन्त और शरीर उनके असंख्यात। इससे स्पष्ट है कि द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वारमें भी आदिकी चार मार्गणाओंमें भी जीवोंकी संख्या ही कही गई है। शरीरोंकी संख्या नहीं कही गई है।

द्रव्यप्रमाणानुगमके आगे क्षेत्रानुगम है। क्षेत्र भी नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्र इन चार विभागोंमें विभक्त

है। इनमेंसे कौनसा क्षेत्र यहांपर अधिकृत है। इस प्रश्नपूर्वक उत्तर दिया गया है कि यहांपर नोआगमद्रव्यक्षेत्र अधिकृत है। निर्देशादिककी अपेक्षा कहा गया है कि नोआगमद्रव्यक्षेत्र क्या वस्तु है? उत्तर देते हैं कि वह नोआगमद्रव्यक्षेत्र आकाश है। यथा—

एदेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयदं ? णोआगमदो दव्व-खेत्तेण पयदं। णोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं ? आगासं गगणं देवपथं गेज्झकाचरिदं अवगाहलक्खणं आधेयं वियापगं आधारो भूमित्ति।

यह क्षेत्र नोआगमसे भावक्षेत्रवाले जीवोका कहा गया है। नोआगमसे भावक्षेत्र आगमके विना अर्थोपयुक्त जीवको अथवा औदयिकादि पांचप्रकारके भावोको कहते हैं। इन पाचप्रकारके भाववाले जीवोंका आधार आकाशक्षेत्र है ऐसा यहां समझना चाहिए। शरीर जीवोके होते हैं इसलिए जीवोके अवगाहके साथ साथ कही कही शरीरोंका अवगाह क्षेत्र भी आ जाता है फिर भी वह क्षेत्र शरीरोका नही जीवोंका ही समझना चाहिए। क्योकि शरीरोके साथ इसका मेलजोल नही वैठता है।

सयोगिकेवली जिनका वर्तमान क्षेत्र निवास लोकका असं-ख्यातवा भाग, लोकके असंख्यात वहुभाग एवं सर्वलोक ऐसे तीन प्रकारका कहा गया है। यथा —

सजोगिकेवली केवडि खेत्ते ? लोगस्स असखेज्जदिभागे असखेज्जेसु वा भागेसु सव्वलोगे वा। ४।– खेत्तानुगम

प्रत्येक क्षेत्रके सम्बन्धमें धवलाकार कहते हैं—

दंडगदो केवली केवडि खेत्ते ? चउण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

कवाडगदो केवली केवडि खेत्ते ? तिण्हं लोगाणमसंखेज्जदिभागे अड्ढाइज्जादो असंखेज्जगुणे।

पदरगदो केवली केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जेसु भागेसु। लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते ? सव्वलोगे।

यह केवलीका क्षेत्रनिवास इस बातकी सिद्धि करता है कि क्षेत्रानुगम अनुयोगद्वार चौदहगुणस्थान और चौदहमार्गणास्थानवर्ती भावजीवोमें वर्तमान क्षेत्रनिवासको कहता है न कि औदारिकादि तीन शरीरोके क्षेत्र निवासको। औदारिकादि तीन शरीरोका क्षेत्र निवास सिर्फ लोकका असंख्यातवांभाग मात्र है। यथा—

क्षेत्रतोऽन्यत्वं-औदारिकवैक्रियिकाहारकाणि लोकस्यासंख्येयभागक्षेत्रे। राजवार्तिक अ. २

लोकके असंख्यातवहुभागो में अथवा सर्वलोकमें किसी भी एक औदारिक वैक्रियिक और आहारक शरीरका निवास नहीं है।

स्पर्शनके नामस्पर्शन, स्थापनास्पर्शन, द्रव्यस्पर्शन, क्षेत्रस्पर्शन, कालस्पर्शन और भावस्पर्शन ये छह भेद हैं। इनमेंसे इस प्रकरणमें जीवोका क्षेत्रस्पर्शन प्रकृत है। यथा—एदेसु फोसणेसु जीवखेत्तफोसणेण पयद।

केवलीका स्पर्शक्षेत्र भी पूर्वोक्त प्रमाण है। यथा—

सजोगिकेवलीहि केवडिय खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स संखेज्जदिभागो असंखेज्जा वा भागा सव्वलोगो वा ।

यह स्पर्शक्षेत्र भी आत्माका है । क्योंकि किसी भी औदारिक शरीरका स्पर्शक्षेत्र लोकके असख्यात वहुभाग और सर्वलोक संभव है । यह सिर्फ आत्मामें ही संभवता है ।

औदारिक वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरोका स्पर्शक्षेत्र इस प्रकार कहा गया है—

स्पर्शतोऽन्यत्वं औदारिकादीनां एकजीवं प्रति वक्ष्याम. । औदारिकेण तिर्यग्भिः सर्वलोकः स्पृष्टः । मनुष्यैः लोकस्यासंख्येयभागः । मूलवैक्रियिकशरीरेण लोकस्यासंख्येयभागा उत्तरवैक्रियिकशरीरेण अष्टौ चतुर्दशभागा देशोनाः । कथ ? सौधर्मदेवाः स्वपरप्राधान्यादारणाच्युतविहारात् षड्रज्जूर्गच्छन्ति स्वप्राधान्यात् अधः आवालुकापृथिव्या द्वे रज्जू इति । आहारकेण लोकस्यासंख्येयभागं स्पृशति ।

तीन शरीरोका उक्त स्पर्श अतीत काल सम्बन्धी है । अतीत कालमें एक तिर्यंचके अगणित शरीर होचुके हैं उनके अपने उस औदारिक-शरीरसे सर्वलोक स्पर्श कहा गया है । एक समयमें एक शरीरके द्वारा कोई भी जीव सम्पूर्ण लोकका स्पर्श नहीं कर सकता । अथवा उक्त कथन नानाजीवोंकी अपेक्षासे है । नाना तिर्यंच जीवोंने अपने औदारिक शरीरसे सम्पूर्ण लोकका स्पर्श किया है । इत्यादि । खैर, कुछ भी हो केवलीका स्पर्शक्षेत्र आत्माका स्पर्शक्षेत्र है । शरीरका नहीं है । अत. इस कथनसे सव गुणस्थान

कालान्तर्मुहूर्तोनानि । आहारकस्य कालो जघन्य उत्कृष्टश्चान्तर्मुहूर्तः ।

शरीरोंके इस कालभेदसे भी प्रतीत होता है कि जीवट्ठाणादिकोंमे कहा गया काल भावजीवोका है । कही जीवोके भावोका और शरीरोका समान काल होते हुए भी जीवट्ठाणादिकोंमे भावजीवोका ही काल कहा गया है । शरीरोका नही कहा गया है ऐसा समझलेना अनुचित नही है ।

अन्तरके भी नामादि छह भेद हैं । उनमें से नोआगमभावोका अन्तर यहा लिया गया है । यथा—

एत्थ केण अंतरेण पयदं ? णोआगमदो भावंतरेण । तत्थ वि अजीवभावमंतर मोत्तूण जीवभावतरं पयदं, अजीवभावंतरेण इह पओजणाभावा ।

अर्थात् यहा इन अन्तरोमें से कौनसा अन्तर प्रकृत है ? नोआगमसे जो भावान्तर है वह यहां प्रकृत है । उसमें भी अजीवभाव (शरीरादि) को छोड़कर जीवके गत्यादिभावोका अन्तर प्रकृत है । क्योकि शरीरादि अजीवके भावोके अन्तरसे यहा प्रयोजन नहीं है ।

धवलाके इन वाक्यों परसे स्पष्ट है कि अन्तरानुगममें जीवके मिथ्यात्वादि और गत्यादि भावोका अन्तर–विरहकाल कहा गया है । इतना ही नही शरीरादि अजीवभावोका अन्तर प्रयोजन न होनेके कारण निषिद्ध भी कर दिया गया है । जीवट्ठाणके इस अन्तरानुगमको और खुद्दाबधके भी इस अनुयोगद्वारको तथा राजवार्तिकके

एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो ? णोआ
गमभावभावेण । [illegible] ? णामादि-तिण्णि
[illegible]जीवसमासाणं अ[illegible] पओजणाभावा।

इसका भावार्थ है कि इन नामादि चार भावोंमेंसे कि
भावका यहां अधिकार है? उत्तर देते हैं नोआगमसे भावभाव
यहां अधिकार है। यह कैसे जाना जाता है कि यहां नोआ
भावभावका अधिकार है? उत्तर देते हैं कि नाम, स्थापना औ
द्रव्य ये तीन भाव चौदह जीवसमासोंके आत्मभूत अर्थात् नि
भाव नहीं हैं। इसलिए यहांपर इन तीन भावोंसे प्रयोजन न
है। प्रयोजन सिर्फ आत्माके औदयिकादि पांच भावोंसे है।

मूल भाव पांच हैं और उत्तर भाव त्रेपन हैं जिनसे गुणस्
और मार्गणास्थान उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्वादि और गत्या
त्रेपन भावोंरूप आत्माकी परिणतिका नाम नोआगमभाव भाव
इन्हीं भावोंकी सत्ता संख्या पूर्वके अनुयोग द्वारोंमें कही गई है
आगेका अल्पबहुत्वभी इन्हीं भावोंमें कहा गया है।

अल्पबहुत्वके भी नामादि चारभेद हैं उनमेंसे यहा सचित्त द्रव्याल्पबहुत्व लिया गया है। यथा—

एदेसु अप्पाबहुएसु केण पयदं ? सचित्तदव्वप्पाबहु- । पयदं ।

अर्थात् इन अल्पबहुत्वोंमें से कौनसा अल्पबहुत्व प्रकृत है ? र देते हैं सचित्तद्रव्योका अल्पबहुत्व यहा प्रकृत है।

आगममें निर्देशादि छह अनुयोग भी कहे गये हैं। उनका ान भी इस सम्बन्धमें देखिये—

किमप्पाबहुअं ? संखाधम्मो एदं तिगुण चदुगुणं इदि द्धिगेज्झो। कस्सप्पाबहुअं ? जीवदव्वस्स, धम्मिवदिरित्त- ाधम्माणुवलंभा। केणप्पाबहुअं? पारिणामिएण भावेण। त्थप्पाबहुअं ? जीवदव्वे। केवचिरमप्पाबहुअं ? अणादि- ज्जवसिदं। कुदो ? सव्वेसिं गुणट्ठाणाणमेदेणेव पमाणेण व्वकालमवट्ठाणादो। कइविहमप्पाबहुअं ? मग्गणभेयभि- ागुणट्ठाणमेत्तं।

अल्पबहुत्व क्या वस्तु है ? संख्याधर्मका नाम अल्पबहुत्व है। । कि यह तिगुना है चौगुना है इत्यादि बुद्धिद्वारा ग्राह्य है। ल्पबहुत्व किसके होता है ? जीवद्रव्यके होता है। क्योंकि धर्मीसे दा धर्म नहीं होता है। किस कारणसे अल्पबहुत्व होता है ? पारिणा- क भावसे होता है। किसमें होता है ? जीवद्रव्यमें होता है। कितने ालपर्यन्त अल्पबहुत्व होता है ? अनादि अपर्यवसान तक होता है।

शरीरोंके अन्तरको सामने रख विचार कर लीजिये करकंकणको आरसी की जरूरत नहीं है। ग्रन्थ बढ़नेके भयसे यहां उद्धरण नहीं दिये गये हैं।

भावके भी नामभाव, स्थापनाभाव, द्रव्यभाव और भावभाव ऐसे चार भेद हैं। उनमें नोआगमभावभावकी अपेक्षा इस प्रकरणमें कथन है। यथा—

एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो ? णोआगमभावभावेण । तं कथं णव्वदे ? णामादिसेसभावेहि चोद्दसजीवसमासाण अणप्पभूदेहि इह पओजणाभावा।

इसका भाव यह है कि इन नामादि चार भावोंमेंसे किस भावका यहा अधिकार है ? उत्तर देते हैं नोआगमसे भावभावका यहा अधिकार है। यह कैसे जाना जाता है कि यहा नोआगम भावभावका अधिकार है ? उत्तर देते हैं कि नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन भाव चौदह जीवसमासोंके आत्मभूत अर्थात् निजी भाव नही हैं। इसलिए यहांपर इन तीन भावोंसे प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन सिर्फ आत्माके औदयिकादि पांच भावोंसे है।

मूल भाव पांच हैं और उत्तर भाव त्रेपन हैं जिनसे गुणस्थान और मार्गणास्थान उत्पन्न होते हैं। मिथ्यात्वादि और गत्यादि त्रेपन भावोंरूप आत्माकी परिणतिका नाम नोआगमभाव भाव है। इन्हीं भावोंकी सत्ता संख्या पूर्वके अनुयोग द्वारोंमें कही गई है। आगेका अल्पबहुत्वभी इन्हीं भावोंमें कहा गया है।

अल्पबहुत्वके भी नामादि चारभेद हैं उनमेंसे यहा सचित्त द्रव्याल्पबहुत्व लिया गया है। यथा—

एदेसु अप्पाबहुएसु केण पयदं ? सचित्तदव्वप्पाबहुएण पयदं।

अर्थात् इन अल्पबहुत्वोमें से कौनसा अल्पबहुत्व प्रकृत है ? उत्तर देते हैं सचित्तद्रव्योका अल्पबहुत्व यहा प्रकृत है।

आगममें निर्देशादि छह अनुयोग भी कहे गये हैं। उनका कथन भी इस सम्बन्धमें देखिये—

किमप्पाबहुअं ? संखाधम्मो एदं तिगुण चदुगुणं इदि बुद्धिगेज्झो। कस्सप्पाबहुअं ? जीवदव्वस्स, धम्मिवदिरित्त-संखाधम्माणुवलंभा। केणप्पाबहुअं? पारिणामिएण भावेण। कत्थप्पाबहुअं ? जीवदव्वे। केवचिरमप्पाबहुअं ? अणादि-यपज्जवसिदं। कुदो ? सव्वेसिं गुणट्ठाणाणमेदेणेव पमाणेण सव्वकालमवट्ठाणादो। कइविहमप्पाबहुअं ? मग्गणभेयाभि-ण्णगुणट्ठाणमेत्तं।

अल्पबहुत्व क्या वस्तु है ? संख्याधर्मका नाम अल्पबहुत्व है। जो कि यह तिगुना है चौगुना है इत्यादि बुद्धिद्वारा ग्राह्य है। अल्पबहुत्व किसके होता है? जीवद्रव्यके होता है। क्योकि धर्मीसे जुदा धर्म नहीं होता है। किस कारणसे अल्पबहुत्व होता है ? पारिणामिक भावसे होता है। किसमें होता है ? जीवद्रव्यमें होता है। कितने कालपर्यन्त अल्पबहुत्व होता है ? अनादि अपर्यवसान तक होता है।

ता 'कही गई है। अतएव भावरूप मनुषिणी की अपेक्षा . ९३ वें में संजदशब्द होना ही चाहिये।

सौ सूत्रों तक ही द्रव्यवेद क्यों है !

गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चार मार्गणाओका कथन सत्प्ररूपणाके प्रारंभके सौ सूत्रोमें समाप्त होता है। इस सम्बन्धमें द्रव्यपक्षके प्रधान नेता कहते हैं कि " चौदह मार्गणाओमें आदिकी चार मार्गणाएं जीवके शरीरसे ही सम्बन्ध रखती हैं। इसलिए गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चार मार्गणाओमें द्रव्यवेदके साथ ही गुणस्थान बताये गये हैं " (पे १८ पं. १५) "परन्तु इससे आगे वेदमार्गणामें वेदोमें गुणस्थान बताये हैं वहा पर द्रव्यशरीरके वर्णनका कोई कारण नही है " इत्यादि (पे. १९ पं. ८)

यह सब आगमप्रमाणके अभावमें पंक्तियोके लेखक महोदयके मस्तिष्ककी स्वतत्र उपज है। जबकि विग्रह गतिके जीवोको छोड़कर शेष सभी जीवोके शरीर पाये जाते हैं और चौदहों मार्गणाए भी एक ही कालमें प्रत्येक संसारी जीवोके पतिक्षण पाई जाती हैं। ऐसी हालतमें आदिकी चार मार्गणाओकी तरह आगेकी वेद, कपाय आदि दश मार्गणाएं भी शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली हो जाती हैं। क्योंकि जो शरीर आदिकी चार मार्गणाओके साथ पाया जाता है वही शरीर आगेकी वेदादि मार्गणाओके साथ भी

स्मावबाले नहीं हैं। गति आदि भाव और उनमें यथासंभव
ञान विग्रहगतिमें भी होते हैं किन्तु शरीर और द्रव्यवेद विग्र-
में होते ही नहीं हैं फिर भी आदिकी चार मार्गणाओमें शरीर
द्रव्यवेदके साथ ही यदि गुणस्थान कहे गये हैं तो विग्रहग-
उन चार मार्गणावाले जीवोके कोई भी गुणस्थान नहीं
जावेंगे। क्योंकि विग्रहतिमें शरीर और द्रव्यवेद नहीं हैं।
विग्रहगतिमें शरीर और द्रव्यवेदके विना भी गुणस्थान कहे
। हैं तो फिर विग्रहगतिके अलावा समयोमें शरीर और
यवेदके विना गुणस्थान क्यो नहीं कहे जाते? कौन ऐसा जबर्दस्त
ण है जो इस भेदको उत्पन्न करता है। वेदादिमार्गणाओमें और
हगतिमें शरीरके विना भी गुणस्थान कहे जाते हैं सिर्फ
दिकी चार मार्गणाओं में ही शरीरके विना गुणस्थान नहीं कहे जाते
। यह एक अनोखी बात है जिसके लिए आदिकी चार मार्ग-
ओमें ही शरीर और द्रव्यवेदका ग्रन्थविरुद्ध जाल बिछाया गया है।

आदिकी चार मार्गणाओं में भी शरीर नहीं कहे गये हैं। इस
ग्रन्थमें एक उद्धरण यहा दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।
धेक उद्धरणोके देनेसे लेखका कलेवर बढ़ता है। बाकी ऐसे
द्धरण धवलामें अनेक भरे पडे हैं। देखिये—

एत्थ पुढवी काओ सरीरं जेसिं ते पुढवीकायाचि ण
सव्वं, विग्गहगईए वट्टमाणाणं जीवाणमकायत्तप्पसंगादो।
णो कधं वुच्चदे ? पुढविकाइयणामकम्मोदयवंतो जीवा
ढविकाइया त्ति वुच्चंति। —द्रव्यपमाणानुगम, पे. २३०

'ऐसी हालतमें ' आदिकी चार मार्गणाएं मुख्यरीतिसे शरीर और द्रव्यवेदका ही विवेचन करनेवाली हैं ' इस प्रतिज्ञाका प्रध्वंस होजाता है। योगमार्गणा भी शरीरका विवेचक नहीं है यह हम पहले कह आये हैं। आगे भी प्रकरण पाकर इस विषयका और भी स्पष्टीकरण करेंगे।

तात्पर्य यह है कि शरीर और द्रव्यवेद आदिकी चार मार्गणाओंमें कहे ही नहीं गये हैं। कहे गये हैं तो वे ही शरीर और द्रव्यवेद आगेकी मार्गणावालोंके भी हैं। इसलिए उनका सम्बन्ध आगे भी पहुंचता है। यह केवल परोक्तिमें दोषापादन है, वस्तुवृत्त्या किसी भी मार्गणाके होनेमें शरीर और द्रव्यवेद कहे ही नहीं गये हैं क्योंकि शरीर और द्रव्यवेदमें न गुणस्थान कहे गये हैं और न ही उनकी संख्या, स्वामी आदि कहे गये हैं। और न ही ये चौदह मार्गणाओंके होनेमें साधकतम कारण हैं। अतएव मार्गणा प्रकरणमें शरीर और द्रव्यवेद अप्रयोजनीभूत हैं।

सौ सूत्रोक्तजीवोंमें भाववेद क्यों नहीं!

समन्वयके लेखक साभिमान कहते हैं कि "इन सूत्रोंमें भाववेदकी गन्धभी नहीं है" (पेज २५ पं. १६) सौ सूत्रोंद्वारा भाववेद नहीं कहा गया इतना मात्र ठीक हो सकता है परन्तु सौ सूत्रोक्तजीवोंमें सत्प्ररूपणामें भाववेद की गन्ध नहीं है ऐसा तो है नहीं, जब कि भाववेदका प्रतिपादन करनेवाली पांचवीं वेदमार्गणा

है। वह सौ सूत्रोक्त जीवो में और गुणस्थानो में भाववेदका विधा करती है और भाववेदके भेद भी प्रतिपादन करती है। वेद गणाके सूत्र नं. १०१ से ११० तकके दश सूत्रोंद्वारा चारों गति जीवो में, पांचो इन्द्रियजातियो में और छहो कायजातियो में भाव वेद कहा गया है। ये वे ही जीव हैं जो गतिमार्गणामें गतिके रूपसे इन्द्रियमार्गणामें इन्द्रियजातिके रूपसे और कायमार्गणामें कायजा तिके अनुरूपसे कहे गये हैं। सौ सूत्रोक्त जीवो में ही इन सूत्रो द्वारा भाववेद कहा गया है। इस तरह सौ सूत्रवाले जीवो द्रव्यवेद कहा गया हो तो बतावें।

वस्तुवृत्या देखा जाय तो सौ सूत्रोंद्वारा ही नही, समूचे जीव ट्ठाण द्वारा भी अपने शब्दो में द्रव्यवेद कहा गया हो तो उसकी स्प विधि बताई जावे। इन सौ सूत्रों मे भाववेदकी गन्ध नहीं है, न सही, जब कि सौसूत्रान्तर्गत चारों मार्गणाओ वाले और पर्याप्त— अपर्याप्त सभी जीवो में भाववेद प्रतिक्षण यहां तक कि विग्रहग समयो में भी ओत–प्रोत भरा पड़ा है। जब भाववेद खुद ही जीवोकी नस नसमें भरा पड़ा है तब उसकी गन्धकी आवश्यक ही कौनसी अवशिष्ट रह जाती है।

वस्तुत. सौ सूत्रो में ही नही, समूचे जीवट्ठाणमे खुद्दाबंधमें औ बंधसामित्तविचयमें भी द्रव्यवेदकी गन्ध हो तो बतावें। जि जीवो में कौनसा द्रव्यवेद होता है, कौन कौनसे गुणस्थान पर्यन्त कौन कौनसा द्रव्यवेद होता है और द्रव्यवेदोंकी संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व ये सब किस किस प्रका

ते हैं ये सब बातें कोई सप्रमाण बता तो दें। बादर-सूक्ष्म और
प्ति-अपर्याप्त सभी एकेन्द्रियजीवोंके द्रव्यवेद है ही नहीं,
ग्रहगतिके जीवोंके भी द्रव्यवेद नहीं है। यह सब जीवराशि
अनन्तानन्त है। जो सर्वथा द्रव्यवेदसे विरहित है। जो द्रव्यवेद
सी भी सूत्रद्वारा कहा ही नहीं गया है उसकी विधि कहना
र जो भाववेद सूत्रोंद्वारा कहा गया है उसकी गन्ध भी न
ाना यह कथन शास्त्र मार्गकी सुरक्षा करता है या उसकी काट
ट करता है। थोड़ा मस्तिष्क लगाकर विचार करनेकी जरूरत है।

जब जो मार्गणा कही जाती है तब उसी मार्गणाका
धान्य होता है अत. उसी अपेक्षासे वह कथन हुआ करता है
ष मार्गणाका कथन उस समय गौण हो जाता है। क्योंकि अपने
पने प्रकरणमें अपनी अपनी प्रधानता हुआ करती है। उस वक्त
षमार्गणाओंका अभाव नहीं हो जाता है। वे सिर्फ उस समय
ौण रहती हैं। ये सब मार्गणाएं भावरूप है। इन्हीं भावरूपमार्ग-
ाओंका सत्प्ररूपणामें सत्त्व व भेद और इन्हींमें गुणस्थानोंका
त्त्व कहा गया है। द्रव्यपरिमाणादिकमें इन्हीं भावमार्गणावाले
ीवोंका गुणस्थानोंमें द्रव्यपरिमाण, क्षेत्र, स्पर्श आदि कहे गये हैं।
ं सारे जीवट्ठाणमें भाववेद अपना आसन जमाये हुए अड़े खड़े
। अत. आदिकी चार मार्गणाओंमें भाववेदकी गन्ध नहीं है
ह कथन अनालोचित है।

विग्रहगतिके जीवोंको छोड़कर शेष सब जीवोंके शरीर भी
ोते हैं तथा एकेन्द्रियोंको छोड़कर शेष सब जीवोंके द्रव्यवेद

ामें ही होते हैं। उपयोगात्मक शेष ज्ञान–दर्शन पर्याप्त अव-
ामें ही होते हैं, क्षयोपशमात्मक दोनों अवस्थाओंमें होते हैं।
मी सम्यग्दर्शन दोनो अवस्थाओमें होते हैं, किसी किसीके कोई
म्यक्त्व पर्याप्त–अवस्थामें ही होते हैं। सामान्यतः ये जीव गति-
तुष्टयसे बाहरके नही हैं। अत गतिया सब मार्गणाओमें प्रतिक्षण
ाप्त हैं इसलिए कह दिया गया कि गतियोंके पर्याप्त–अपर्याप्त
थनसे ही शेष सब मार्गणाओंमें पर्याप्त–अपर्याप्तपनेका बोध
जाता है। गतियोका जैसा सम्बन्ध सब मार्गणाओंकेसाथ है
ा सम्बन्ध और और मार्गणाओका प्रायः नहीहै, इसलिए कह दिया
या कि और मार्गणाएं गतियोसे व्यतिरिक्त अर्थात् जुदी नहीं हैं
सका अर्थ यह नही है कि गतियोके सिवा कोई मार्गणाएं ही
ी है और उनमें पर्याप्तता–अपर्याप्तताका व्यवहार ही नही है।

" आगेकी वेदकषायादिमार्गणाओमें पर्याप्तियों और अपर्या-
योंके सम्बन्धसे गुणस्थानोका विवेचन नही किया है। अतएव
ा वेदादिमार्गणाओंमें द्रव्यशरीका वर्णन नही है किन्तु भाव-
काही वर्णन है और भाववेदका कथन होनेसे उन मार्गणाओंमें
वस्त्रोकी विवक्षासे चौदह गुणस्थान बताये गये हैं इत्यादि "।
पेज. ८७)

आगेकी वेदकषायादिमार्गणाओमें पर्याप्तियों और अपर्या-
योंके सम्बन्धसे गुणस्थानोका विवेचन नहीं किया। यह लिखना
र्या गलत है। जब कि स्त्रीवेदके उदयवाले जीव प्रथम द्वितीयमें
ाप्त–अपर्याप्त और तीसरेसे नौवें तक पर्याप्त, पुरुषवेदका उद-

अतः पं. मक्खनलालजी की ये पंक्तियां इस प्रकार कही
सकती हैं कि आगे की वेदकषायादिमार्गणाओं में भी 'अनेन
गतार्थत्वात्' इस हेतु पदके अनुसार पर्याप्तियों और अपर्याप्तियों
सम्बन्धसे गुणस्थानोंका विवेचन गतार्थ हो जाता है। अत एव जि
तरह उन वेदादिमार्गणाओं में द्रव्यशरीर का वर्णन नहीं है कि
भाववेदका ही वर्णन है उसी तरह आदि की चारमार्गणाओं में

र्याप्तता-अपर्याप्तता होते हुए भी द्रव्यशरीर का वर्णन नही है
न्तु भाववेदका ही वर्णन है और भाववेदका कथन होनेसे उन
दिकी चारमार्गणाओ में भी भावस्त्रीकी अपेक्षासे चौदह गुणस्थान
ाये हैं। इस लिए भावस्त्रीकी अपेक्षा नं. ९३ वें सूत्रमेंभी
तढपद का होना अनिवार्य है।

" आगेकी वेदकषायादिमार्गणाओंमें पर्याप्तिओ और अपर्या-
योंके सम्बन्धमे गुणस्थानोका विवेचन नहीं है" यह आगमविरुद्ध
तवा है। जब कि सूत्रकार स्वंय आगेकी सब मार्गणाओंमें पर्या-
यों और-अपर्याप्तियोंका विवेचन कर रहे हैं और धवलाकारभी
व मार्गणाओ में बीस प्ररूपणाओका प्ररूपण करते हुए उनमें गुणस्था-
का और संभव पर्याप्तियो और अपर्याप्तियोका विवेचन कर रहे
। तथा यह भी कह रहे हैं की गतियोंमें कही गई पर्याप्तता
ोर अपर्याप्तता परसे ही सभी मार्गणाओ में पर्याप्तियो और अप-
ाप्तियोंका कथन गतार्थ हो जाता है । आगे पर्याप्तता और
पर्याप्तता है ही नही तो फिर गतार्थ हो कौन जाता है! अतः
ागेकी मार्गणाओका कथन भी पर्याप्तियो और अपर्याप्तियोंके
थनसे विरहित नही है।

योगोंपरसे द्रव्यशरीर सिद्ध नहीं होता।

धवलाकारने द्रव्यमन और भावमनके विवेचनसे यह स्पष्ट
र दिया है कि यह सब कथन द्रव्य शरीरका है (पे. २७)।
ह बात भी समन्वयके लेखक कहते हैं।

धवला एक टीका है, टीकामें उक्त-अनुक्त सभी विषयोंका प्रसंगवश विवेचन किया जाता है। इस विवेचनसे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि यह सब सीधा कथन षट्खंडागमकारका ही है। फिर धवलाकारने यह भी तो नहीं कहा कि यह सब विवेचन द्रव्य शरीरका है। धवलाकार तो यह कहते हैं कि '**योगद्वारेण जीवद्रव्यप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह**' अर्थात् योगोंके द्वारा जीव द्रव्यका प्रतिपादन करनेके लिए आचार्य पुष्पदन्त आगेका सूत्र कहते हैं। इससे यह निश्चित है कि आचार्य पुष्पदन्त भट्टारकने योगोंके द्वारा जीव द्रव्यका ही प्रतिपादन किया है, न कि शरीरोंका। सूत्रमें भी प्रातःस्मरणीय पुष्पदन्त भट्टारक स्वयं प्रतिज्ञा करते हैं कि 'जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी वचिजोगी कायजोगी चेदि' योगोंकी अपेक्षासे जीवोंका प्रतिपादन किया जाता है कि जीव मनयोगवाले, वचनयोगवाले और काययोगवाले इसप्रकार तीन प्रकारके होते हैं। आचार्यकी प्रतिज्ञा खास योगवाले जीवोंके कहनेकी है। तदनुसार योगवाले जीव ही उनने कहे हैं। मनोयोगके द्वारा द्रव्यमन नहीं कहा है। क्योंकि द्रव्यमन चौदहवें गुणस्थान तक होता है किन्तु मनोयोगका होना स्वयं आचार्यने तेरहवें गुणस्थान तक ही कहा है। शरीर भी चौदहवें तक होता है परन्तु काययोगका होना तेरहवें तक ही कहा है। कुछ योगोंका जघन्य काल एक समयमात्र है और उत्कृष्ट काल जिनके कि दो या तीन योग होते हैं अन्तर्मुहूर्तका ही कहा है जो शरीरोंमें किसी तरह भी सम्भवित नहीं है चौदहवें गुणस्थानवर्ती योगियोंके

र तो होता है परन्तु योग कोई सा भी नहीं होता है। अतएव रके होते हुए भी चौदहवें गुणस्थानवर्ती भगवान् अयोगी होते अशरीरी वे नहीं होते हैं। सख्या क्षेत्र स्पर्श आदि भी योगोंमें ही तक उनकी सत्ता है वहीं तक कहे गये हैं। योगोकी संख्या दि और शरीरोकी संख्या आदि और दोनोंके गुणस्थानोंमें सत्त्व त्र भिन्न भिन्न रीत्या ग्रन्थोंमें वर्णित हैं। इससे निश्चित होता के षट्खंडागमकारने योगोकी अपेक्षा जीवोंका ही विवेचन ा है। शरीरोंका विवेचन यहा जीवट्ठाणादि आदिके तीन में नहीं किया है। शरीर जीवके भाव नहीं हैं यह कहा जा है। योग जीवके भाव हैं यह जीवट्ठाणके आठों अनुयोगोंसे खुद्दाबंधके बारह अनुयोगद्वारोसे सुनिश्चित है। कहनेका र्थ यह है कि पूज्यपाद आचार्योंने योगमार्गणाके द्वारा योग- जीवोंको या मन, वचन और काय इन तीन योगोंको कहा शरीरोंको नहीं कहा है।

' धवलाकारने द्रव्यमन और भावमन का कैसा विवेचन किया ह भी ध्यान देने योग्य है। इससे स्वयं समझमें आ जयगा दर असलमें योगोंके इस विवेचनसे योग कहे गये हैं या शरीर।

धवलाकारने ' मनके द्वारा जो योग होता है उसे मनोयोग ते हैं ' ऐसा मनोयोग का स्वरूप कहा है। इस परसे शंका ई गई है कि ' यदि ऐसा है तो द्रव्यमनसे सम्बन्ध होनेको योग नहीं कह सकते, क्योंकि द्रव्यमनसे सम्बन्ध होनेको योग मान लेने पर मनोयोगकी कुछ कम तेतीस सागर प्रमाण की स्थितिका प्रसंग आता है।

इस शंकामें शंकाकारने द्रव्यमनसे सम्बन्ध होनेको मनोयो
गमान लेनेमें आपत्ति उपस्थितकी है। क्योंकि द्रव्यमनका उत्कृष्ट का
देव और नारकियोंमें तेतीस सागर प्रमाण है परन्तु मनोयोग
काल जियादह से जियादह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इस आपत्तिप
द्रव्यमन और मनोयोग जुदे जुदे हैं कमसे कम यह निश्चित हो ज
है। धवलाकारने भी इस आपत्तिको स्वीकार करलिया है। अ
स्वयं धवलाकार द्रव्यमनसे सम्बन्ध होनेको मनोयोग न
मानते हैं।

शंकाकारकी दूसरी शंका है ' क्रिया सहित अवस्थाको
योग नही कह सकते, क्योंकि क्रिया सहित अवस्थाको योग म
लेने पर योगका रात–दिन प्रमाण कालका प्रसंग आता है, शंक
कारकी इस आपत्तिको भी आचार्यने स्वीकार करलिया है। क्यों
रात दिन प्रमाण योगोका काल आचार्यको इष्ट नहीं है।

शंकाकारकी तीसरी शंका यह है कि ' भावमनके स
सम्बन्ध होनेको भी मनोयोग नही कह सकते। क्योंकि भाव
ज्ञानरूप है इसलिए उसका उपयोगमें अन्तर्भाव है। इस आपत्ति
भी आचार्यने स्वीकार कर लिया है।

इसलिए वे कहते हैं कि ' इस प्रकार तीनों विकल्पों द्वा
कहे गये दोष यहां प्राप्त नहीं होते है। क्योंकि हमने तीनों
विकल्पोंको स्वीकार नहीं किया है। अर्थात् आचार्यने उत्त
कर दिया कि द्रव्यमनसे सम्बन्ध होनेको मनोयोग, क्रिया सहि
अवस्थाको मनोयोग, भावमनके साथ सम्बन्ध होनेको मनोयो

म नही मानते हैं ऐसा मान लेने पर ये आपत्तियां आसकती हैं। तद्यथा —

मनसा योगो मनोयोगः। अथ स्यात्; न द्रव्यमनसा सम्बन्धो मनोयोगः, मनोयोगस्य देशोनत्रयस्त्रिंशत्सागरकालस्थितिप्रसंगात्। न सक्रियावस्थो योगः, योगस्याहोरात्रमात्रकालप्रसंगात्। न भावमनसा सम्बन्धो मनोयोगः, तस्य ज्ञानरूपत्वतः उपयोगान्तर्भावात् इति ? न त्रितयविकल्पोक्तदोषः, तेषामनभ्युपगमात्। कः पुनः मनोयोग इति चेत् ? भावमनसः समुत्पत्यर्थः प्रयत्नो मनोयोगः, तथा वचसः समुत्पत्यर्थः, प्रयत्नो वाग्योगः कायक्रियासमुत्पत्यर्थः प्रयत्नः काययोगः। — धवल पृ. २७८।

अत निश्चित है कि भावमनकी, वचनकी और कायक्रियाकी समुत्पत्तिके लिए जो प्रयत्न विशेष है उस प्रयत्न विशेषको क्रमश यहापर मनोयोग, वचनयोग और काययोग कहा गया है। न कि द्रव्यमन, द्रव्यवचन और द्रव्य शरीरोको यहांपर मनोयोग, वचनयोग और काययोग कहा गया है।

कहते हैं कि वह योग जिस जीवके या जिस जीवमें होता है इसप्रकार इन् प्रत्यय करदेने पर जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी सिद्ध होता है। यथा —

'तदस्यास्त्यास्मिन्' इति इनि सति सिद्ध मनोयोगी, वाग्योगी काययोगीति।

साम्प्रतं मार्गणाकृदवान्तरस्थितमभिधाय तत जी
मासान्वेषणाय सूत्रमाह, एकेन्द्रियाणां भेदमभिधाय सा
द्वीन्द्रियादीनां भेदमभिधातुकामः उत्तरसूत्रमाह, पृथिवि
यादीनां भेदप्ररूपणाय उत्तरसूत्रं भणति, त्रसजीवप्रतिप
नार्थमुत्तरसूत्रमाह, बादरजीवप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रम
योगद्वारेण जीवद्रव्यप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रमाह, इत्यादि

इन अवतरणिकाओंसे भी विदित होता है कि सूत्रोंमें मु
गत्यादि विशिष्ट जीवोंका ही प्रतिपादन किया गया है। न कि
रोंका। शरीर आगममें पांच कहे गये हैं औदारिक, वैक्रियिक, आह
तैजस और कार्मण। द्रव्यवेद भी आगममें तीन कहे गये हैं
पुरुष और नपुंसक। पहले किसी सूत्र द्वारा ये नाम ब
चाहिए या इनका अस्तित्व बताना चाहिए। फिर कहना चा
कि एकेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त तथा द

दि पर्याप्त और अपर्याप्त ये सब शरीर के वाचक हैं। या इन ोंके प्रतिपादक सूत्रों द्वारा शरीर कहे गये हैं। शरीरों की विधि ा अस्तित्व बताये बिना इन सूत्रों द्वारा शरीर कहे गये हैं यह हना वन्ध्यासुत-सौभाग्य का व्यावर्णन है।

सूत्रकार निम्न सूत्रद्वारा चौदह जीवसमासोंके अन्वेषणार्थ ौदह ही जीवस्थानोंके कहनेकी प्रतिज्ञा कर रहे हैं। यथा—

एत्तो इमेसिं चोद्सण्हं जीवसमासाणं मग्गणट्ठदाए तत्थ माणि चोद्दस चेव ट्ठाणाणि णायव्वाणि भवंति ॥ २ ॥

इस सूत्रमें जीवसमासपद है उसका अर्थ टीकाकार लिखते है के. जीवा समस्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। अर्थात् जीवोंका जिनमें संग्रह किया जाय उनको जीव-समास कहते हैं। इस सूत्रमें आगत मार्गणापदका अर्थ लिखते है कि सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्श आदिसे विशिष्ट चौदह जीवसमास जिसमें या जिसके द्वारा खोज किये जाते हैं उसे मार्गणा कहते हैं। यथा— चतुर्दश जीवसमासाः सदादिविशिष्टा मार्ग्यन्तेऽस्मिन्ननेन वेति मार्गणम्। इस वाक्यसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सत् संख्या आदि आठ अनुयोग भी जीवोंके ही प्रतिपादक है। इस 'एत्तो इमेसिं' सूत्रके आगे 'त जहा' सूत्रके द्वारा आचार्यसे पूछा गया कि वे चोदह मार्गणास्थान कौनसे हैं। इस परसे आचार्यने उनके नाम निम्न प्रकार बताये हैं—

गइ इंदिए काये जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ॥ ४ ॥

ही कहा गया है कि योनिमेहनादि नामकर्मके उदयसे द्रव्यवेद होता है और उसमें इतने गुणस्थान होते हैं, इतनी संख्या है, इतना क्षेत्र है, इतना स्पर्श है, इतना काल है, इतना अन्तर है, यह नोआगमजीवभाव है और उसमें इस प्रकार अल्पबहुत्व है। विवक्षा और अविवक्षा सत् में ही होती है, आकाश कुसुमादि असत्में नहीं होती। अतः अस्तित्व तो द्रव्यवेद का इसीसे साबित हो जाता है। परन्तु उसकी विवक्षासे न गतिमार्गणा होती है और न ही उनके गुणस्थान होते हैं। इसलिए द्रव्यवेदका उदय गतिमार्गणा और उसके गुणस्थानोंके होनेमें साधकतम कारण नहीं है। यही द्रव्यवेदकी अविवक्षा है। साराश षट्खडागमकारने नारकोंमें भाववेद ही कहा है। द्रव्यवेद नहीं कहा है। इसका कारण यही है कि प्रकरण आत्माके परिणामोंका है। द्रव्यवेद आत्माका परिणाम नहीं है।

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठि–सासणसम्माइट्ठि–असंजदसम्माइट्ठिणं सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता। ८४। सम्मामिच्छाइट्ठि–संजदासंजदट्ठाणेणियमा पज्जत्ता। ८५। एवं पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता। ८६। पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छाइट्ठि–सासणसम्माइट्ठिणे सिया पज्जत्तिआओ सिया अपज्जत्तिआओ। ८७। सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि संजदासंजद[illegible] पज्जत्तियाओ॥ ८८॥

पाठकगण इस कथनपरसे सदाशयपर पहुंच गये होंगे मनुष्यसामान्यमें तीनो वेदोंका, मनुष्यपर्याप्तमें स्त्रीवेदको छोड़ पुरुषवेद और नपुंसकवेद ऐसे दो वेदोंका और मानुषीमनुष्यके स्त्रीवेदका ही उदय है। फलितार्थ यह हुआ कि स्त्रीवेदका धारक मनुष्यगतिका जीव ही मानुषीमनुष्य है। गोम्मटसारके कर्ता मानुषीशब्दका अर्थ मानुषीमनुष्य करते हैं और इनके उदय और सत्त्वका चौदह गुणस्थानोंमें कथन करते हैं। इनके उदय योग्य प्रकृतियोंमें पर्याप्तनामकर्मका उदय कहा गया इससे ये मानुषियां पर्याप्त भी होती हैं द्रव्यवेदियोंके नियमानुसार पर्याप्तशब्दसमन्वित होनेसे क्या इनको द्रव्यस्त्री मान लिया जाय? जिस मनुष्यके स्त्रीवेदका उदय नहीं है वह मानुषी ही नहीं है। मानुषीमनुष्यके अपर्याप्तअवस्थामें सम्यक्त्व होता नहीं है, उसका अभाव आनुपूर्वीके निषेध परसे ही स्पष्ट हो जाता है। स्त्रीवेदका उदयवाला जीव वह चाहे तिर्यंच हो, चाहे मनुष्य हो, चाहे देवांगना हो, द्रव्य—भाव कोई भी चौथे असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जन्मग्रहण ही नहीं करता है। जो यह कहते हैं भावस्त्रीके अपर्याप्त अवस्थामें चौथा गुणस्थान होता है उनके पास वावदूकताको छोड़कर कोई प्रमाण नहीं। आगे भी हम इस विषयको लिखेंगे।

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदसंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ। ९३।

[illegible] आर
नारकी पृथिवीको छोड़कर नपुंसकवेदका उदय नहीं है
कारण स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदययुक्त असंयतस
गुणस्थानमें क्रमशः चारों आनुपूर्वियोंका और नरकानुपूर्वीको
शेष तीन आनुपूर्वियोंका उदय नहीं है।

विशेषता यह समझना चाहिए कि देवांगनाओंके चौ
स्थानमें देवानुपूर्वीका उदय नहीं है, मनुष्यिणियोंके इस
यत स्थानमें मनुष्यगत्यानुपूर्वीका उदय नहीं है और
नियोंके इसी असंयतगुणस्थानमें तिर्यगानुपूर्वीका उद
है। आनुपूर्वियां क्षेत्रविपाकी हैं, उनका उदय विग्रहग
होता है। स्त्रीवेदका उदयवाला जीव सम्यक्त्वको साथ ले
नहीं है इसलिए स्त्रीवेदके उदयवाले जीवके चौथे गु
आनुपूर्वियोंका उदय है ही नहीं। नपुंसकवेदका उदयवाले
नरकानुपूर्वीका उदय तो चौथे गुणस्थानमें है परन्तु मनु
तिर्यंच सम्बन्धी नपुंसकवेदके उदयवाले जीवके चौथे गुण
किसी भी आनुपूर्वीका उदय नहीं है।

अपर्याप्त मनुष्योंमें अपर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यंच के
७१ प्रकृतियोंका उदय है। विशेषता इतनी ही है कि अ
पंचेन्द्रियतिर्यंचके अपनी आनुपूर्वी, गति और आयुका उ
और अपर्याप्तमनुष्यके अपनी आनुपूर्वी, गति और
उदय है।

पाठकवर्ग इस कथनपरसे सदाशयपर पहुंच गये होंगे नुष्यसामान्यमें तीनो वेदोका, मनुष्यपर्याप्तमें स्त्रीवेदको र पुरुषवेद और नपुसकवेद ऐसे दो वेदोंका और मानुषीमनु-एक स्त्रीवेदका ही उदय है। फलितार्थ यह हुआ कि स्त्रीवेदका ाला मनुष्यगतिका जीव ही मानुषीमनुष्य है। गोम्मटसारके कार मानुषीशब्दका अर्थ मानुषीमनुष्य करते हैं और इनके उदय और सत्त्वका चौदह गुणस्थानो मे कथन करते हैं। उदय योग्य प्रकृतियो में पर्याप्तनामकर्मका उदय कहा गया सेस ये मानुषिया पर्याप्त भी होती हैं द्रव्यवेदियोके निय-सार पर्याप्तशब्दसमन्वित होनेसे क्या इनको द्रव्यस्त्री मान ा जाय ? जिस मनुष्यके स्त्रीवेदका उदय नहीं है वह मानुषी नहीं है । मानुषीमनुष्यके अपर्याप्तअवस्थामें सम्यक्त्व नहीं है, उसका अभाव आनुपूर्वीके निषेध परसे ही स्पष्ट हो ता है। स्त्रीवेदका उदयवाला जीव वह चाहे तिर्यंच हो, चाहे ुष्य हो, चाहे देवांगना हो, द्रव्य—भाव कोई भी चौथे असंय-म्यग्दृष्टि गुणस्थानमें जन्मग्रहण ही नही करता है। जो यह हते हैं भावस्त्रीके अपर्याप्त अवस्थामे चौथा गुणस्थान होता है नके पास वावदूकताको छोड़कर कोई प्रमाण नही। आगे भी म इस विषयको लिखेंगे।

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-ांजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ। ९३ ।